Chapter-1

==

:: प्रथम अध्याय ::

:: विषय - प्रवेश ::

==

:: प्रथम अध्याय ::

:: विषयप्रवेश ::

1.00 : प्रास्ताविक :

उपन्यास साम्प्रत युग के नये मनुष्य की नयी रचनात्मक विधा है । नये वैज्ञानिक आविष्कार , उसके प्रकाश में संचलित नवीन- चिंतन-धाराएं , मनोवैज्ञानिक क्षितिजों के विस्तृत होने के साथ मानवीय — चेतना के अतल सागर में छिपी मानव-मन की गहराइयों का अन्वेषण और विश्लेषण , औद्योगीकरण , नगरीकरण , नवीन शिक्षा-पद्धति , मिशनरी धर्म-प्रचार के फलस्वरूप उद्भूत आर्यसमाज , ब्रह्मोसमाज , प्रार्थनासमाज , थियोसोफी सोसायटी जैसे धार्मिक- सामाजिक आंदोलन ; इनके फलस्वरूप भारत के मध्यकालीन फ्यूडलिस्ट , रूढ़िवादी सामाजिक ढांचे का टूटना , प्रभृति कारणों से मनुष्य के जीवन , चिंतन , रहन-सहन इत्यादि में बड़े क्षिप्रगामी परिवर्तन आये हैं । फलतः मनुष्य का जीवन पहले के किसी भी काल की तुलना में अधिक संकुल एवं जटिल हो गया है । आधुनिक मनुष्य के जीवन की इस जटिलता को पूर्णतया रूपायित कर सके ऐसे एक "फार्म"

या "जेनर" की तलाश थी । पश्चिम में इसी तलाश की परिणति के रूप में " Novel " जैसा साहित्य-रूप अस्तित्व में आया । यहां एक बात ध्यातव्य होगी कि हमारे यहां की भांति यूरोप में भी " Novel " के जन्म के पूर्व " prose " या गद्य विकसित हुआ ।

"तत्कालीन अंग्रेजी-समाज में वे परिस्थितियां भली प्रकार विकसित हो चुकी थीं जो उपन्यास की प्रौढ़ता के लिए आवश्यक हैं । एडिसन , स्टील आदि निबंधकारों के प्रयत्नों के फलस्वरूप और पत्रकारत्व के विकास के फलस्वरूप ऐसे गद्य का विकास हो चुका था , जो वर्णन , विवेचन और चित्रण में समर्थ था । " [1]

Loginus, Heliyodoras तथा peteronious ने गद्य प्रेमाख्यानों को दिया । इसके पश्चात् इटली के लेखक Bocaccio कृत " Decameron " , फ्रांसीसी लेखक Rabale कृत व्यंग्य-विनोद कृति , " Gargantuva and pantagrouvel " , स्पेनिश लेखक sarvanties कृत " डॉन क्विक्सोट " जैसी रचनाओं को पूर्व-औपन्यासिक एवं कुछ-कुछ उपन्यास से मिलती-जुलती रचनाएं कह सकते हैं ।

वस्तुतः उपन्यास के जन्म के मूल में यूरोपीय पुनर्जागरण है । यह यूरोप का चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी का एक विशाल और मूलगत सांस्कृतिक आंदोलन था , जिसने धीरे-धीरे समूचे यूरोप की काया-पलट कर दी , और जब यूरोपीय प्रजाएं अमेरिका , आफ्रिका या एशिया में संक्रमित हुईं तो वह काया-पलट उन-उन देशों में भी हुई । डा. भारतभूषण अग्रवाल ने इस स्थिति का जायजा लेते हुए कहा है , " पुनर्जागरण यूरोप की वह महान संक्रान्ति थी जिसने मध्ययुगीन जड़ता , रूढ़ि और अन्धविश्वासों को , गोथिक वास्तु-विद्या को , संकीर्ण दृष्टिकोण को , ह्रासोन्मुखी अर्थ-व्यवस्था को और सामन्तीय अ-राष्ट्रीयता को बहा दिया और उनके स्थान पर सन्देहवाद , व्यक्तिवाद ,पदार्थवाद , मुक्ति , आत्माभिव्यक्ति के साथ-साथ एक गतिशील आर्थिक-व्यवस्था और राष्ट्रीयता को

प्रतिष्ठित किया । स्वभावतः ही इस संक्रान्ति ने धीरे-धीरे एक ऐसे उद्वेलन का रूप लिया जिसमें सब प्रकार की गतानुगतिकता को तिलांजलि दी जाने लगी , ~~धार्मिक मूढ़ता के स्थान पर~~ समाज में एक नई स्फूर्ति और सक्रियता प्रकट हुई जिसके फलस्वरूप नये-नये देशों की खोज की जाने लगी , धार्मिक मूढ़ता के स्थान पर वैज्ञानिकता का अनुशीलन प्रारंभ हुआ , व्यापार और उद्योगों को नई गति मिली , नये नगर-राज्य स्थापित हुए , मठों और गिरजों के चंगुल से निकलकर शिक्षा नई सरणियों में प्रवाहित होने लगी , मुद्रण-कला के आविष्कार और प्रसार ने एक ऐसा शिक्षित-अर्द्धशिक्षित पाठक-वर्ग उत्पन्न कर दिया जो श्रेष्ठ साहित्य का रस लेने में असमर्थ होते हुए भी पठन-व्यसनी था , देशभक्ति का जन्म हुआ और मानव अपनी इयत्ता के अभिज्ञान की ओर अग्रसर हुआ । " [2]

अतः कहा जा सकता है कि इस नयी गतिशीलता , नये अभिज्ञान और नयी सक्रियता के प्रतिफलन के रूप में उपन्यास जैसी विधा का उदय हुआ । मध्ययुगीन रम्याख्यानों से उसका उतना ही अंतर है , जितना इस नवीन दृष्टि और मध्ययुगीन दृष्टि में है । कथा-साहित्य में कदाचित् पहली बार साधारण नर-नारियों की कथा को Bocaccio ने " Decameron " में लिया । उसमें लेखक ने इस साधारण मानव-जगत के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक-धार्मिक भ्रष्टाचारों को बेपर्द करते हुए धार्मिक कहे जाने वाले पादरियों के चारित्रिक स्खलनों पर उपहास किया था ; जिसे हम हिन्दी उपन्यास-साहित्य के अन्तर्गत प्रेमचन्द , नागार्जुन , रेणु , शैलेश मटियानी जैसे उपन्यासकारों में लक्षित कर सकते हैं । शिवानी के उपन्यासों में भी "भैरवी" , "कालिन्दी" प्रभृति उपन्यासों में इस प्रवृत्ति को रेखांकित किया जा सकता है । यूरोप में बोकासियो , राबले और सर्वान्टिस के बाद उपन्यास के वास्तविक जनकों में डैनियल डीफो , फिल्डिंग , स्मोलेट , रीचार्डसन तथा स्टर्न आदि लेखक आते हैं, जिनमें प्रथम तीन के अन्तर्गत बाह्य-यथार्थ का निरूपण मिलता है , तो अंतिम दो व्यक्ति की आंतरिक भावनाओं और मनःस्थितियों का चित्रण

करने में सिद्धहस्त थे ।

अंग्रेजों के भारत आगमन के साथ और उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यहां भी औद्योगिक क्रान्ति होने पर अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव-स्वरूप औपन्यासिक विधा का प्रारंभ हो गया । उसे नवल , नवलकथा , नोवेल , उपन्यास , कादंबरी , अफसाना जैसे नाम दिये गये हैं । हिन्दी और बंगला में "उपन्यास" नाम चल पड़ा है । यह विधा नई है , परंतु उसके नामाभिधान के लिए जिस शब्द का चयन हुआ है — उपन्यास — वह शब्द भारतीय नाट्यशास्त्र का प्रचलित शब्द है । हमारे यहां नाटक में प्रतिमुख-संधि के एक उपभेद के रूप में इस शब्द का प्रयोग होता रहा है , जहां उसका अर्थघटन दो प्रकार से हुआ है — /1/ उपन्यासः प्रसादनम् — अर्थात् उपन्यास मन का प्रसादन या रंजन करता है , और /2/ उपपत्ति कृतो ह्यर्थः उपन्यासः — अर्थात् जहां कोई बात युक्तिपूर्वक कही गई हो उसे उपन्यास कहते हैं । [3] अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह जो नयी विधा योरोप से यहां संक्रमित हुई है , उसमें उक्त दोनों गुणों को परिलक्षित करते हुए उसे यह नाम दिया गया हो । तात्पर्य यह है कि विधा नयी है , नाम पुराना है । अतः प्रचलित विधान को प्रतिलोमित करते हुए कह सकते हैं कि — " उपन्यास इज़ ए न्यू वाईन इन ओल्ड बोटल " ।

जैसा कि ऊपर कहा गया , भारतीय भाषाओं में उपन्यास 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारंभ हुआ । नीचे जो तालिका दी जा रही है , उसमें कतिपय भाषाओं के प्रथम उपन्यासों को दर्शाया गया है [4] :—

भाषा	उपन्यास	लेखक	वर्ष
1. गुजराती	करणघेलो	नंदशंकर तुळजाशंकर मेहता	1866
2. बंगला	आलालेर घरेर दुलाल	प्यारी चांद मित्र	1857
3. मराठी	यमुनापर्यटन	बाबा पदमनजी	1857
4. तेलुगु	राजशेखर चरित्र	कंदुकुटि पंतुलुनि	1878
5. मलयालम	पुलेली कुंचू	आर्च डीकन के. कोशी	1882

6. असमिया : कामिनीकान्तार चरित्र : ए.के. गर्नी : 1877
7. कन्नड : इन्दिरा : वासुदेवाचार्य : 1908
8. तमिल : प्रतापमुदलियार चरित्र : वेदनायकम् पिल्लै : 1869
9. हिन्दी : भाग्यवती ? पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी : 1878

यद्यपि हिन्दी के कुछ इतिहासकारों ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास के आधार पर लाला श्रीनिवासदास कृत "परीक्षागुरु" को (1882) प्रथम उपन्यास माना है, परंतु इस क्षेत्र में जो नये अनुसंधान हुए हैं, उनके आधार पर पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी के उपन्यास "भाग्यवती" को ही हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना जा सकता है।[6]

इस प्रकार देखा जाय तो हिन्दी उपन्यास के प्रारंभ को 118 वर्ष होते हैं। इन लगभग सवा सौ वर्षों में हिन्दी उपन्यास का चौमुखी विकास हुआ है। प्रेमचन्दपूर्वकाल (सन् 1878-1918) के उपन्यास स्थूल, कथावस्तु-प्रधान, बोध-प्रधान, अपरिपक्व, तिलस्मी एवं जासूसी थे। तब तक चरित्र-चित्रण की समुचित पद्धति विकसित नहीं हो पायी थी। पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी, लाला श्रीनिवासदास, पं. बालकृष्ण भट्ट, मेहता लज्जाराम शर्मा, मन्नन द्विवेदी, देवकीनंदन खत्री, बाबू गोपालराम गहमरी आदि इस काल के प्रमुख उपन्यासकार हैं।

वस्तुतः हिन्दी उपन्यास को गौरवान्वित और गरिमामंडित करने का श्रेय मुंशी प्रेमचन्द को जाता है। अतः सन् 1918-1936 का समय हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्दयुग के नाम से जाना जाता है। प्रेमचन्द ने उपन्यास की जो परिभाषा दी है — " मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं। "[7] — उससे ही उनकी उपन्यास-विषयक विभावना स्पष्ट होती है। प्रेमचन्द सचमुच में मानव-चरित्र के चितेरे थे ; मानव-चरित्र की सच्चाइयों को, उसके उजले-अंधेरे पक्षों को प्रेमचन्दजी ने बखूबी पकड़ा था। डा. एस.एन. गणेशन ने बिलकुल ठीक कहा है कि — " मानव-चरित्र की पहचान हमें सर्वप्रथम

प्रेमचन्द में मिलती है ।[8] वस्तुतः मानव-जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण प्रेमचन्द की अपनी विशेषता है । मानव-जीवन और मानवीय संवेदना प्रेमचन्द के प्रतिपाद्य हैं । एक बार एक संगोष्ठी में प्रेमचन्द की प्रासंगिकता पर प्रश्न उठने पर अज्ञेय ने कहा था — " साहित्य की संवेदना को , मानवीय चेतना को , हमने अधिक विकसित या प्रसारित नहीं किया है । प्रेमचन्द को हम पीछे छोड़ आये हैं यह दावा सार्थक उस दिन होगा , जिस दिन उनसे बड़ी मानवीय संवेदना हमारे बीच प्रकट हो । उसके बाद ही हम यह कह सकते हैं कि प्रेमचन्द का महत्त्व ऐतिहासिक महत्त्व है । तब तक वे हमारे बीच में हैं , पुराने पड़कर भी समर्थ हैं , साहित्य-संस्कार में गुरु-स्थानीय हैं और उनसे हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए । " [9]

वस्तुतः इस मानवीय संवेदना को भांपनेवाली जो दृष्टि या आंख प्रेमचन्द के पास थी , उसका हिन्दी में अन्यत्र अभाव दिखता है । तभी तो निरालाजी ने अपने ठेठ बैसवाड़ी लहजे में कहा था — " आँखें कौनो के पास आहिं तो याही के पास आंहि । " [10] और प्रेमचन्द की मृत्यु पर बोलपुर में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने हिन्दीवालों से कहा था — "एक रतन मिला था तुमको , तुमने खो दिया । " [11]

प्रेमचन्दकालीन औपन्यासिक उपलब्धियों में "सेवासदन" , "प्रेमाश्रम" , निर्मला" , "ग़बन" , रंगभूमि" , "कर्मभूमि" , "गोदान" §प्रेमचन्द§ ; मां , "भिखारिणी " §विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" § ; "गोद" , "अंतिम आकांक्षा " § सियारामशरण गुप्त § ; "घण्टा" , "बुधुआ की बेटी" §पांडेय बेचैन शर्मा "उग्र" § ; "गढ़कुण्डार" , "विराटा की पद्मिनी " §वृन्दावनलाल वर्मा § ; "त्यागमयी" , "पतिता की साधना" §भगवतीप्रसाद वाजपेयी§ ; "हृदय की परख" , "अमर अभिलाषा" §चतुरसेन शास्त्री § ; "भाई" , "गदर" , "सत्याग्रह" , "तपोभूमि" §ऋषभचरण जैन § ; "कंकाल" §जयशंकर प्रसाद§ ; "वचन का मोल " §उषादेवी मित्रा § प्रभृति उपन्यासों को परिगणित कर सकते हैं । इस काल के उपन्यास

मूलतः समस्यामूलक है । हालांकि प्रेमचन्द-काल के अंतिम वर्षों में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात हो गया था । जैनेन्द्र , इलाचन्द्र जोशी तथा भगवती-चरण वर्मा इत्यादि का लेखन प्रेमचन्द-काल में शुरू तो हो गया था , परंतु उक्त लेखकों ×××× के कृतित्व का विकास तो प्रेमचन्दोत्तरीय युग में ही हुआ है ।

प्रेमचन्दोत्तर काल में कई औपन्यासिक प्रवृत्तियां मिलती हैं , जैसे — सामाजिक उपन्यास , ऐतिहासिक उपन्यास , मनोवैज्ञानिक उपन्यास , समाजवादी उपन्यास , आंचलिक उपन्यास , पौराणिक उपन्यास , राजनैतिक उपन्यास , व्यंग्य उपन्यास , साठोत्तरी उपन्यास आदि आदि । सामाजिक उपन्यास तो पूर्व प्रेमचन्दकाल से ही मिलता है । बल्कि हिन्दी का पहला उपन्यास ही सामाजिक उपन्यास है । ×××× प्रेमचन्द काल में उसका विकास होता है । प्रेमचन्दोत्तर युग में वह शिल्प और वस्तु-संकलना की दृष्टि से ×××× विकसित होता है । ऐतिहासिक उपन्यास का वास्तविक सूत्रपात प्रेमचन्द युग में वृन्दावनलाल वर्मा से हुआ , जो प्रेमचन्दोत्तर काल में भी अनेकानेक दृष्टियों से विकसित होता रहा । जैनेन्द्र ने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात किया । मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी होते तो सामाजिक ही हैं , परंतु उनमें बाह्य सामाजिक आर्थिक समस्याओं की अपेक्षा आंतरिक-मनोवैज्ञानिक समस्याओं को तरजीह मिलती है । समाजवादी उपन्यासों में मार्क्सवादी दृष्टि का प्राधान्य देखा जा सकता है । आंचलिक उपन्यासों में अंचल की समग्रता को उसकी तमाम-तमाम विशेषताओं के साथ उद्घाटित किया जाता है । पौराणिक उपन्यासों में कथावस्तु रामायण , महाभारत या अन्य पुराणों पर आधारित होती है । आजादी के बाद हमारे नेताओं के आचार-विचार में तथा भौतिकवादी चिंतन के कारण लोगों में नैतिकता तथा जीवन-मूल्यों का ह्रास मिलता है , उसके कारण राजनीतिक एवं व्यंग्य के उपन्यास सामने आये हैं । उपर्युक्त सभी औपन्यासिक प्रवृत्तियां उपन्यास के विषय-वस्तु आदि से संबद्ध है । परंतु इधर की आलोचना में साठोत्तरी नाटक , साठोत्तरी कविता , साठोत्तरी

उपन्यास इत्यादि की चर्चा विशेष रूप से चल पड़ी है । यहां एक तथ्य ध्यातव्य रहे कि साठोत्तरी उपन्यास साठ के बाद के तो होंगे , परंतु साठ के बाद के सभी उपन्यास साठोत्तरी नहीं कहे जायेंगे । केवल उन उपन्यासों को साठोत्तरी माना जायेगा , जिनमें विशेषतः साठ के बाद की मानसिकता का निरूपण हुआ हो ।[12]

प्रेमचन्दोत्तर काल की प्रमुख औपन्यासिक रचनाओं में "बूंद और समुद्र" , "अमृत और विष " , नाच्यौ बहुत गोपाल " , "मानस का हंस", "खंजन नयन " (अमृतलाल नागर) ; गिरती दीवारें" , " शहर में घूमता आईना " , (उपेन्द्रनाथ अश्क) ; "झूठा सच " , " मेरी तेरी उसकी बात" (यशपाल) ; "बलचनमा" , उग्रतारा" , "इमरतिया" (नागार्जुन) ; "मुर्दों का टीला " , " कब तक पुकारूं " (रांगेय राघव) ; "टेढ़े मेढ़े रास्ते " , "रेखा" , "सबहु नचावत राम गोसाईं " , "प्रश्न और मरीचिका" , (भगवतीचरण वर्मा) ; " हौलदार" , "एक मूठ सरसों" , "चिट्ठीरसैन" , "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " , " आकाश कितना अनंत है " (शैलेश मटियानी) ; "मैला आंचल " , "परती परिकथा " , " जुलूस" , "दीर्घतपा" (फणिश्वरनाथ रेणु) ; "त्यागपत्र" , "कल्याणी" , "जयवर्द्धन" , "मुक्तिबोध" (जैनेन्द्र) ; "शेखर एक जीवनी" , " नदी के द्वीप" , अपने अपने अजनबी " (अज्ञेय) ; "जहाज का पंछी" , "प्रेत और छाया" (इलाचन्द्र जोशी) ; "अजय की डायरी" , "भीतर का घाव " (डा॰ देवराज) ; "धरती धन न अपना" , " कभी न छोड़ें खेत " (जगदीशचन्द्र) ; "लोहे के पंख " , " नदी फिर बह चली " , "कथासूर्य की नयी यात्रा" (हिमांशु श्रीवास्तव) ; "अंधेरे बन्द कमरे " , " न आनेवाला कल " , "अंतराल" (मोहन राकेश) ; "एक सड़क सत्तावन गलियां" , "डाकबंगला" , "आगामी अतीत" , " तीसरा आदमी " (कमलेश्वर) ; "सारा आकाश" , "उखड़े हुए लोग " , "शह और मात " , "अनदेखे अनजान पुल " (राजेन्द्र यादव); "बैसाखियोंवाली इमारत" , "अठारह सूरज के पौधे" (रमेश बक्षी) ; "सूरजमुखी अंधेरे के " , "मित्रो मरजानी" , "जिन्दगीनामा" (कृष्णा सोबती) ; "आपका बंटी" , "महाभोज" (मन्नू भण्डारी) ; "पचपन खंभे लाल दीवारें",

"रूकोगी नहीं राधिका ? " {उषा प्रियंवदा} ; "बेघर" {ममता कालिया} ; "आधा गांव" , "दिल एक सादा कागज" {डा. राही मासूम रजा} ; "जल टूटता हुआ" , "अपने लोग " {रामदरश मिश्र } ; "नीला चांद" , "अलग अलग वैतरणी " , "औरत" , "गली आगे मुड़ती है " {डा. शिवप्रसाद सिंह}; "एक और अहल्या" , "पीतांबरा" , "प्रथम पुरूष" { डा. भगवतीशरण मिश्र}; "कृष्णकली" , "चौदह फेरे" , " श्मशानचंपा" , "मायापुरी" , "सुरंगमा" {शिवानी} प्रभृति उपन्यासों को गिनाया जा सकता है ।

प्रेमचन्द युग में उषादेवी मित्रा तथा शिवरानी देवी जैसी कुछ इनी-गिनी लेखिकाएं थीं , परंतु प्रेमचन्दोत्तर काल की एक विशेषता यह भी है कि उसमें विशेषतः कथा-साहित्य के अन्तर्गत अनेकानेक लेखिकाओं ने पदार्पण किया है , जिनमें उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी , कृष्णा सोबती , कृष्णा अग्निहोत्री , मालती जोशी , शशिप्रभा शास्त्री , ममता कालिया , दीप्ति खंडेलवाल , मेहरून्निसा परवेज , चन्द्रकान्ता , मृदुला गर्ग , प्रभा खेतान , शीला रोहेकर , चित्रा मुद्गल , राजी सेठ , मैत्रेयी पुष्पा , मंजुल भगत आदि को परिगणित कर सकते हैं । शिवानीजी भी इसी श्रृंखला की एक कड़ी है । भावुकता , कथा की छायावादी परिणति , कथासूत्रों का फार्मूला , कथावस्तु में अनेकानेक संयोगों को जुटाने की प्रवृत्ति आदि के कारण हिन्दी के कतिपय आलोचक शिवानी के कथा-साहित्य की कटु आलोचना करते हैं । परंतु एक तथ्य तो सभी स्वीकृत करते हैं कि कि शिवानी की गद्यशैली अद्भुत है , भाषा पर उनका प्रभुत्व है । शैली में काव्यात्मकता , प्रतीकात्मकता, संकेतात्मकता , नवीन रूपकों , उपमानों , विशेषणों तथा नवीन शब्दों के प्रयोग में शिवानीजी सिद्धहस्त हैं । अतः शैलेश मटियानी , निर्मल वर्मा , मोहन राकेश , कमलेश्वर , रमेश बक्षी प्रभृति आधुनिक शैलीकारों में शिवानीजी का नाम प्रथम पंक्ति में आ सकता है ।

1.01 : उपन्यास और गद्य : उपन्यास की परिगणना कथा-साहित्य के अंतर्गत होती है । कथा तो प्रबंध-काव्यों एवं महाकाव्यों में भी रहती थी , परंतु वह कथा पद्यमय होती थी । उपन्यास की विशेषता यह है कि

वह शत-प्रतिशत गद्य की विधा है । उपन्यास की परिभाषा में भी इस तथ्य को रेखांकित किया गया है । न्यू इंग्लिश डीक्शनरी में उपन्यास की जो परिभाषा दी गई है , उसमें स्पष्टतया कहा गया है — " Novel is a Fictional prose of conciderable length in which actions and characters are professing to represent those of real life are portrayed in a plot. "

" 13 इस परिभाषा में स्पष्टरूपेण कहा गया है कि उपन्यास प्रकथनात्मक गद्य है । उपन्यास के महत्वपूर्ण आलोचकों में एक ऐसे राल्फ फोक्स महोदय तो एक कदम आगे बढ़कर कहते हैं — "A novel is not merely a fictional prose, it is a prose of man's life, the first art to attempt the man as a whole, and to give his expression. " 14

इस परिभाषा के पूर्वार्द्ध का अर्थ होगा — उपन्यास मात्र प्रकथनात्मक गद्य नहीं , प्रत्युत् मानव-जीवन का गद्य है । यहां राल्फ फोक्स महोदय बिलकुल स्पष्ट रूप से कहते हैं कि उपन्यास में प्रयुक्त गद्य किसी भाषा का मानक-गद्य हो , यह आवश्यक नहीं है , बल्कि इसे उपन्यासकार की एक सीमा और कमजोरी माना जायेगा अगरचे वह उपन्यास में केवल मानक-गद्य का उपयोग करता है ।

मानक-गद्य का प्रयोग लेखकीय टिप्पण , विश्लेषण , चिंतन या वर्णन में चल सकता है ; परंतु पात्रों के वार्तालाप के सन्दर्भ में तो वही भाषा प्रयुक्त होगी जो वे पात्र बोलते हैं । ईरा वाल्फर्ट ने उपन्यास की भाषा के संदर्भ में जो टिप्पणी की है , वह भी इसी तथ्य की ओर संकेत करती है । यथा — " Language of human life being lived. " 15

अर्थात् उपन्यास में प्रयुक्त भाषा मानव-जीवन की सक्रिय भाषा — मनुष्य की जीवंत भाषा होती है । दूसरे शब्दों में कहें तो उपन्यास की भाषा में "रीटन लैंग्वेज " नहीं बल्कि "स्पोकन लैंग्वेज" का पुट होना चाहिए । अतः यह परम आवश्यक हो जाता है कि उपन्यासकार का जीवंत भाषा पर पूर्णतया प्रभुत्व हो । उपन्यास-लेखन के क्षेत्र में वही लेखक सफल हो

सकता है , जिसका जीवंत भाषा से , जीवंत भाषा के लहजों से , टोन से , स्लैंग्स से पूर्णतया परिचय हो । यह परिचय तभी संभव होगा जब लेखक अपने आसपास के परिवेश में पूर्णतया निमग्न होगा । अपनी वातानुकूलित केबिन या आरामदेह कमरे में बैठकर लिखने वाले लोग शिष्ट एवं अलंकृत गद्य तो लिख सकते हैं , परंतु वह गद्य नहीं जो लोगों की ज़ुबान पर बैठा हुआ है ।

पर मूल बात तो गद्य की है । वह गद्य कैसा हो , उस पर बाद में आते हैं । गद्य उपन्यास की बुनियादी आवश्यकता है , जिसे हमने उपन्यास-विषयक विधागत विधानों में ऊपर चिन्हित किया है । यह पहले निर्दिष्ट किया गया है कि पश्चिम में भी उपन्यास का आविर्भाव तब हुआ जब एडिसन और स्टील जैसे निबंधकारों ने चिंतन, विवेचन , विश्लेषण एवं विविध प्रकार के वर्णन की क्षमतावाला गद्य सामने प्रस्तुत कर दिया था । हिन्दी साहित्य में आदिकाल तथा मध्यकाल में गद्य की कुछेक रचनाएं मिलती हैं , परंतु ऐसा गद्य जो चिंतन के हर विषय के अनुरूप हो , यहां तक कि विज्ञान एवं गणित में भी प्रयुक्त हो , आना शेष था । गद्य का यह आविर्भाव आधुनिक काल की व्यावर्तक विशेषता है । अंग्रेजों के आगमन के बाद जो धर्म-प्रचार तथा शिक्षा-प्रचार का कार्य हुआ उसने गद्य को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । यों 19 वीं शताब्दी में फोर्ट विलियम कोलेज की स्थापना के बाद पं. लल्लूलाल गुजराती तथा पं. सदल मिश्र जैसे लोगों ने हिन्दी गद्य को आगे बढ़ाने में अपना योगदान दिया है । परंतु उसी समय गैर-एकेडेमिक तौर पर मुंशी इंशाअल्लाखां तथा मुंशी सदासुखलाल जैसे लेखक भी इस दिशा में अग्रसर थे । परंतु इन लेखकों से भी पहले सन् 1741 में रामप्रसाद निरंजनी ने "भाषा-योगवासिष्ठ" नामक ग्रंथ लिखा था , जिसको आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने खड़ी बोली हिन्दी गद्य का आदि-ग्रंथ माना है ।[16]

रामप्रसाद निरंजनी की भाषा और आज की भाषा में बहुत अधिक अंतर नहीं है । दिनकरजी ने निरंजनी की भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत किया है , जिससे यह भलीभांति प्रमाणित हो जाता है । यथा —
" हे रामजी ! जो पुरुष अभिमानी नहीं है वह शरीर के इष्ट-अनिष्ट में

रागद्वेष नहीं करता क्योंकि उसकी शुद्ध वासना है । मलीन वासना जन्मों का कारण है । ऐसी वासना को छोड़कर जब तुम स्थित हो तब तुम कर्ता हुए भी निर्लेप रहोगे । और हर्ष शोक आदि विकारों से जब तुम अलग रहोगे तब वीतराग , भय , क्रोध से रहित रहोगे । जिसने आत्म-तत्व पाया है , वह जैसे स्थित हो वैसे ही तुम भी स्थित हो । इसी दृष्टि को पाकर आत्म-तत्व को देखो । तब विगतज्वर होगे और आत्मपद को पाकर फिर जन्म-मरण के बन्धन में न आओगे । " [17]

"भाषा योगवासिष्ठ " का उपर्युक्त गद्य कहीं-कहीं थोड़ा अटपटा होते हुए भी आज के गद्य से काफी निकट है । रामप्रसाद निरंजनी के पश्चात् लगभग पचास वर्षों बाद फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के साथ हिन्दी गद्य के विकास के प्रयत्न शुरू हो गये थे । हिन्दी गद्य के उन प्रारंभिक पुरस्कर्ताओं में पं. लल्लूलाल गुजराती , पं. सदल मिश्र , मुंशी सदासुखलाल और इंशा-अल्लाखां आदि हैं । इनमें पं. लल्लूलाल गुजराती तथा पं. सदल मिश्र फॉर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी विभाग के प्राध्यापक थे , जिनके अध्यक्ष जान गिल क्राइस्ट थे । वहां पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करने की जो योजना बनी उसमें लल्लूलालजी ने भागवत के दशम् स्कन्ध के आधार पर "प्रेमसागर" नामक गद्य-रचना लिखी , तो सदल मिश्र ने "नासिकेतोपाख्यान" की रचना की । यह बात सन् 1805 की है । उसी समय फॉर्ट विलियम कालेज से अलग दो अन्य लेखक भी हिन्दी गद्य को विकसित करने के यज्ञ में जुटे हुए थे — मुंशी सदासुखलाल तथा इंशा अल्लाखां । मुंशी सदासुखलाल ने श्रीमद् भागवत का हिन्दी अनुवाद "सुखसागर" के रूप में किया तो इंशाअल्लाखां ने सन् 1803 में "रानी केतकी की कहानी" नामक एक गद्यकथा की रचना की । इनमें लल्लूलालजी की हिन्दी भाषा पर ब्रज का काफी प्रभाव लक्षित होता है और उसमें उर्दू का भी पुट मिलता है । सदल मिश्र की भाषा कुछ पुरबीपन लिए हुए है संस्कृत-शब्दावली युक्त है । मुंशी सदासुखलाल के गद्य में संस्कृत-निष्ठता एवं पांडित्य है , तो इंशा अल्लाखां का गद्य उर्दू से प्रभावित है ।

इस प्रकार हम स्पष्टतया देख सकते हैं कि हिन्दी गद्य के इस प्रारंभिक काल में भी गद्य की दो शैलियां मिलती हैं — संस्कृतप्रधान और उर्दूप्रधान । और कमोबेश रूप में ये दो शैलियां अद्यावधि चल रही हैं । प्रेमचन्द और प्रसाद इसके अच्छे उदाहरण हैं । यह वही समय है जब भारत में ब्रह्मोसमाज , आर्यसमाज , प्रार्थनासमाज , थियोसोफी सोसायटी जैसी प्रवृत्तियों के कारण वैचारिक उथल-पुथल चल रही थी । सनातनपंथियों और नव्यसमाजवादियों में वाद-विवाद और कभी-कभी कहा-सुनी तक हो जाती थी । पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा भारतीय समाज करवट ले रहा था । रूढ़िवादिता पर करारे प्रहार हो रहे थे । नारी-शिक्षा , दहेज-प्रथा , विधवा-विवाह , अनमेल विवाह , वृद्ध-विवाह , वेश्या समस्या , अस्पृश्यता की समस्या , हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या , हिन्दी-उर्दू की समस्या जैसे मसलों को लेकर काफी वाद-विवाद चल रहे थे । अतः उनकी सम्यक् अभिव्यक्ति के लिए "उदण्ड मार्तण्ड" , "बंगदूत" , "प्रजामित्र" , "बुद्धिप्रकाश" जैसी पत्रिकाएं अस्तित्व में आयीं । इन पत्र-पत्रिकाओं में उक्त विभिन्न विषयों को लेकर लेख-निबंध-कहानी इत्यादि लिखे जाते थे । अतः विचार , विश्लेषण , चिंतन एवं विषयानुरूप वर्णन के उपयुक्त भाषा शनैः शनैः सक्षम हो रही थी । अभिप्राय यह कि जिस प्रकार योरोप में उपन्यास के जन्म के पूर्व सक्षम गद्य की जो भूमिका थी , प्रायः ऐसी ही भूमिका हमारे यहां भी निर्मित हो रही थी । कथा-साहित्य की भागीरथी को झेलने के लिए सक्षम गद्य का जटाजूट तो होना ही चाहिए । अतः उन्हीं दिनों में पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी , लाला श्रीनिवासदास , पं. बालकृष्ण भट्ट , किशोरीलाल गोस्वामी , पं. मन्नन द्विवेदी प्रभृति लेखकों का आविर्भाव होता है ।

परंतु इनके भी पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द , राजा लक्ष्मणसिंह , पं. श्रीलाल बंशीधर , दयानंद सरस्वती , राजा राममोहन राय जैसे कुछ महानुभाव हुए हैं जिन्होंने हिन्दी गद्य को समृद्ध किया है । उनके पश्चात् बाबू भारतेन्दु ने एक बहुत बड़ा अभियान चलाया , जिसके तहत गद्य को नाना विधाएं विकसित हुईं । ऊपर उल्लिखित लाला श्रीनिवास-

दास , बालकृष्ण भट्ट आदि भारतेन्दु मंडल के ही लेखक थे ।

किन्तु अभी तक के गद्य में ब्रज या उर्दू का प्राधान्य था और खड़ीबोली गद्य का कोई सामान्य रूप सामने नहीं आया था । उक्त दोनों प्रकार की शैलियां कुछ उबड़-खाबड़ और अप्राकृत थी । व्याकरण की दृष्टि से भी कई प्रकार के दोष मिलते थे । पं. श्रीधर पाठक ने खड़ीबोली आंदोलन चलाते हुए गद्यभाषा और काव्यभाषा के भेद को तो मिटा दिया था , परंतु हिन्दी को उसका"पाणिनी " मिला पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के रूप में । उन्होंने "सरस्वती" पत्रिका के माध्यम से हिन्दी गद्य को परिनिष्ठित एवं परिमार्जित करते हुए उसे व्याकरण-सम्मत बनाया । उसमें वह सामर्थ्य पैदा की कि वह अनेकानेक विधाओं तथा शास्त्रों के उपयुक्त हो सकें । पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी के उपरांत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल , बाबू श्यामसुंदरदास , पं. माधवप्रसाद मिश्र , पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी , बाबू गुलाबराय , पदुमलाल पन्नालाल बक्षी , पद्मसिंह शर्मा , डा. पीतांबर बड़थ्वाल तथा अध्यापक पूर्णसिंह जैसे महानुभावों का आविर्भाव द्विवेदीयुग में हुआ , जिनके कारण खड़ीबोली हिन्दी का गद्य अपने सुघड़ रूप में सामने आ पाया ।

द्विवेदीयुग के उपरांत प्रेमचन्द ने हिन्दी गद्य को एक ऊंचाई प्रदान की । प्रेमचन्द की हिन्दी लगभग महात्मा गांधी की परिकल्पना के अनुसार थी । उसमें उन्होंने उर्दू तथा संस्कृत शब्दों के योग से एक सहज स्वाभाविक भाषाशैली का निर्माण किया जो अपनी मुहावरेदानी के लिए प्रसिद्ध है । प्रेमचन्द , उपेन्द्रनाथ अश्क , पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" , विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" प्रभृति लेखक इस परंपरा में आते हैं जिन्होंने हिन्दी की गद्य शैली को सरलता , सहजता , स्वाभाविकता से जीवंत बना दिया । दूसरी तरफ जयशंकर प्रसाद , सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला , सुमित्रानंदन पंत , महादेवी वर्मा प्रभृति छायावादी कवियों ने भी हिन्दी गद्य को समुन्नत किया है । डा. रामधारीसिंह दिनकर तथा अज्ञेय के लेखन में हमें आधुनिक

गद्य के चरम उत्कर्ष के दर्शन होते हैं ।

वर्तमान समय में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी , आचार्य नंददुलारे वाजपेयी , आचार्य नलिन विलोचन शर्मा , डा. नगेन्द्र , डा. नामवरसिंह, डा. विद्यानिवास मिश्र , डा. राममूर्ति त्रिपाठी , डा. रमेशकुंतल मेघ , डा. शिवकुमार मिश्र , डा. अंबाशंकर नागर जैसे आलोचकों तथा विद्वानों ने हिन्दी गद्य को अनेक दृष्टियों से शक्ति प्रदान की है । वहां दूसरी तरफ नागार्जुन , फणिश्वरनाथ रेणु , अमृतलाल नागर , कमलेश्वर , राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश , निर्मल वर्मा , रमेश बक्षी , कृष्णा सोबती , उषा प्रियंवदा , मन्नू भंडारी , डा. राही मासूम रजा , शैलेश मटियानी , नरेश मेहता जैसे कथाकारों ने हिन्दी गद्य को प्रकथनात्मक दृष्टि से समृद्ध किया है । हमारी आलोच्य लेखिका शिवानीजी भी इसी श्रृंखला की एक सशक्त कड़ी है । शिवानी के गद्य को पढ़ना यह भी एक आनंद की वस्तु है । उनके गद्य में हमें छायावादी गद्य की काव्यात्मकता के दर्शन होते हैं । उन्होंने अपनी गद्यशैली को जिस प्रकार विकसित किया है , उसे देखते हुए हम एकाध पैरे-ग्राफ को पढ़ते ही , उनके नाम की छाप से अनभिज्ञ रहते हुए भी , पहचान जाते हैं कि यह शिवानी ही हो सकती हैं ।

हिन्दी गद्य को वेधक एवं व्यंजक बनाने में इधर के व्यंग्यकारों का भी कम योगदान नहीं है । इनमें हम सर्वश्री हरिशंकर परसाई , श्रीलाल शुक्ल , शरद जोशी , रवीन्द्र त्यागी , लतिफ घोंघी , गोपाल चतुर्वेदी, शंकरपूणे ताबिकर इत्यादि को ले सकते हैं । मेरे निर्देशक डा. पारूकांत देसाई की व्यंग्य-रचना "कबिरा खड़ा बाजार में " भी व्यंग्य-गद्य की दृष्टि से एक उल्लेखनीय रचना कही जा सकती है ।

उपन्यास गद्य की विधा है , अतः यह नितांत स्वाभाविक कहा जायेगा कि उसके प्रणयन के अनुरूप गद्य का यथेष्ट विकास होने पर उसका आविर्भाव हो । और पूर्वनिर्दिष्ट तथ्यों के अनुसार योरोप तथा यहां उसका विकास उसी क्रम में हुआ है । यह पहले बताया जा चुका है कि उपन्यास में मानक भाषा का प्रयोग लेखक केवल अपने वर्णन , विश्लेषण एवं

टिप्पणियों के लिए करता है ; उपन्यास का अन्य व्यापार तो पात्रों और उनके कथोपकथनों के माध्यम से चलता है , और यहां पर मानक भाषा नहीं अपितु पात्रों के परिवेश की भाषा , दूसरे शब्दों में कहें तो "स्पोकन लैंग्वेज" का प्रयोग होता है । इस संदर्भ में समकालीन उपन्यास-साहित्य के एक सशक्त हस्ताक्षर गोविन्द मिश्र ने कबीर-रेणु का हवाला देते हुए भाषा के सन्दर्भ में जो कहा है उसे उद्धृत करने का मोह मैं संवृत्त नहीं कर सकती । यथा --

" मैं जो परिवेश उठाता हूं , उसमें अपनी भाषा ले जाने के बजाय वहां की भाषा ढूंढता हूं । .... तो खुद को मैं खुला रखना चाहता हूं कि भाषा भी जमीन की आये , उसी जमीन से ताल्लुक है रेणु-कबीर का । .... [कवि] का व्यक्तित्व पूरा का पूरा सरोबार हो उस जमीन में तो वहां की गन्ध उसमें आयेगी । कबीर का फक्कड़पन हिन्दुस्तान का फक्कड़पन है । इसलिए कबीर की चीजों में भले ही तुलसीदास की अंतरंगता आपको न मिले , भले ही आपको ज्ञान की बातें न मिलें , लेकिन उबड़-खाबड़ ढंग से छोटी-छोटी बातों में , झटके में बहुत-सी बातें कह दी गई हैं । बिना परवाह किए क्या कहा है , क्या हुआ है । यह आम हिन्दुस्तान की चीज है , जहां एक साधारण आदमी भी मामूली ढंग से बड़ी-बड़ी बातें कह जाता है । उसे पता भी नहीं होता । यह जो भारतीय तत्व है , वह मुझे दूसरे लेखकों में कम दिखता है । रेणुजी से तो आज तक ईर्ष्या करता हूं कि मैं उस हद तक सरोबार नहीं हो पाया । .... मैं चाहता हूं कि मेरी रचनाओं में वह चीज आये , लेकिन मुश्किल यह है कि रेणुजी रेणुजी हैं , मैं मैं हूं । " [18]

अतः यह ध्यातव्य रहे कि उपन्यास में वही लेखक सफल हो सकता है , जिसका इस बोलचाल की भाषा पर प्रभुत्व हो । प्रेमचन्द , रेणु , नागार्जुन , मटियानी , गुजराती के उपन्यासकार पन्नालाल पटेल तथा ईश्वर पेटलीकर और झवेरचन्द मेघाणी आदि लेखकों के नाम हम इस संदर्भ में ले सकते हैं । प्रेमचन्द के उपन्यास , कई बार पात्रों की तार्किक परिणति न होने के बावजूद , विश्वसनीय बन पड़े हैं उसका मुख्य कारण परिवेश निर्माण में उनकी

वस्तुवादी दृष्टि रही है । उनके पात्र अपने परिवेश की भाषा को लेकर अवतरित होते हैं । एक उदाहरण द्रष्टव्य रहेगा —

" हाजी हासीम बोले — "बिरादराने वतन की यह नयी चाल आप लोगों ने देखी ? वल्लाह इनको सूझती खूब है । बगली घूसे मारना कोई इनसे सीख ले । मैं तो इनकी रेशादवानियों से इतना बदजन हो गया हूँ कि अगर इनकी नेकनीयती पर ईमान लाने में नजात भी होती , तो न लाऊं ।" अबुल वफा ने फरमाया —" मगर अब खुदा के फजल से हमको भी अपने नफे-नुकसान का एहसास होने लगा है । यह हमारी तादाद को घटाने की सरीह कोशिश है । तवायफें 90 फीसदी मुसलमान हैं , जो रोजे रखती हैं , इजादारी करती हैं , मौलूद और उर्स करती हैं । हमको उनके जाती फैलों से कोई बहस नहीं है । नेक व बद की सजा व जज़ा देना खुदा का काम है । हमको तो सिर्फ उनकी तादाद से गरज है । .... आलिहाजा, मुझे रात को आफताब का यकीन हो सकता है , पर हिन्दुओं की नेकनीयत पर यकीन नहीं हो सकता । " [19]

वस्तुतः ऐसी भाषा को वही लिख सकता है , जिसने जीवन को , अपने आसपास के लोगों को बहुत करीब से देखा हो । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इसलिए प्रेमचन्द को उत्तर-भारत का सच्चा चितेरा मानते हैं । रेणु ने "मैला आंचल " में पूर्णिया जिले के मेरीगंज गांव और उसकी विभिन्न टोलियों के जीवन को लिया है । गुजराती के कवि आलोचक उमाशंकर जोशी ने "मैला आंचल " के सन्दर्भ में एक टिप्पणी की है कि उसमें लेखक ने कमजकम डेढ़ सौ भाषागत "टोन्स" का उपयोग किया है । [20]

रेणु का पाठक कहानी पढ़ता नहीं देखता है , सुनता है । एक-एक ध्वनि , एक-एक रंग , एक-एक गंध को महसूस करता हुआ जीता है । वातावरण — परिवेश जो मात्र कथा-साहित्य का एक तत्त्व ही माना जाता रहा , कदाचित् सर्वप्रथम जीवित पात्र की तरह अपना हक्क रेणु से मांगता है ।[21] एक स्थान पर रमजूदास की पत्नी फुलिया की मां से

कहती है -- " तुम लोगों को तो न लाज है न शरम । कब तक बेटी की कमाई पर लाल किनारीवाली साड़ी चमकाओगी ? आखिर एक हद होती है किसी बात की ? मानती हूं कि जवान विधवा बेटी दुधार गाय के बराबर है , मगर इतना भी मत दुहो कि देह का खून ही सूख जाय । " 22

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी के उपन्यास प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति से सम्बद्ध हैं । अतः उनके उपन्यासों की भाषा में तत्कालीन शब्दावली का आना स्वाभाविक माना जायगा । उनके उपन्यास "चारुचन्द्रलेख" में अक्षोभ्य भैरव राजा सात वाहन को संबोधित करते हुए कहते हैं -- " मूर्ख राजाओं और चाटुकार पंडितों ने 'अरि' का अर्थ ही शत्रु हो जाने दिया है , कभी पड़ोसी राजा को 'अरि' कहा जाता था , मित्र वह होता था जो पडोसी का पड़ोसी हो । किसी समय ऐसा विचार ठीक रहा होगा । परंतु अभी जो तुरुष्क आये हैं , वे सबके शत्रु हैं । .... 'अरि' का 'अरि' होकर भी तुरुष्क मित्र नहीं बनेगा । गांठ बांध लो इस बात को । मैं कान्यकुब्ज का उच्छेद देख चुका हूं , गौड़ का पराभव देख चुका हूं । चौहानों का मर्दन सुन चुका हूं , चंदेलों की कहानी सुन चुका हूं । मित्रसेना के नाम पर गाहडवारों का तुरुष्कों को निमंत्रित करना कितनी बड़ी भूल थी । .... और देख सातवाहन शुक्र और कामंदक की रणनीति में परिवर्तन की आवश्यकता है । हिमालय के उस पार से आने वाली सेना उन बंधनों को नहीं मानती । भटिंडा की लड़ाई में राजपुत्रों की मौलसेना सूर्योदय में ही लड़ने को बाध्य हुई ; कल्यपाल सोये हुए थे , कलेवा नहीं मिला ; अपराह्न तक लड़ते-लड़ते वे क्लान्त हो गए ; लड़ते-लड़ते खा नहीं सकते थे , हजार बाधाएं थीं ; चौका नहीं था ; अस्पृश्य ~~से~~ स्पर्श का बचाव नहीं था ; घोड़ों के मांस से काम नहीं चला सकते थे ; शत्रु की मार से नहीं , पेट की मार से भहरा गए । " 23

यहां पर द्विवेदीजी ने जिस परिवेश को उठाया है उसीके अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है । तुरुष्क , अरि , कान्यकुब्ज , मित्रसेना , मौलसेना , कल्यपाल ,आदि शब्दों का प्रयोग इस परिवेशगत मांग के

कारण हुआ है ।

जगदंबाप्रसाद दीक्षित का उपन्यास "मुर्दाघर" बम्बई की गन्दी-घिनौनी सडांध से भरी हुई झोंपड़पट्टी की यथार्थ तस्वीर को उभारने वाला उपन्यास है । महानगरों की इमारतों के समानान्तर उनके फूटपाथों पर लाखों-करोड़ों मनुष्य , कुत्तों -कौओं और रेंगते हुए कीड़ों से भी बदतर जिन्दगी जी रहे हैं । "मुर्दाघर " ऐसे लोगों से अटा पड़ा है । इस उपन्यास में जब्बार नामक एक पात्र किसी स्मगलर के यहां चोरी करते हुए पकड़ा जाता है । नत्थू नामक एक कैदी उसे पुलिसवालों की अमानुषी मार×ने को सहन करने की तरकीब बताते हुए कहता है -- " किधर भी चोरी करना , पन इस्मगलर , दारूवाला , रण्डीवाला इधर कभी भूल के भी नहीं जाने का , नहीं तो पोलिस जान से मार डालेंगा मार मार के , कभी नहीं छोडेंगा ... सारा पोलिस खाता उधर से च चलता । " 24

इसमें चूंकि बम्बई की झोंपड़पट्टी का परिवेश लिया गया है , इसलिए उस परिवेश में प्रयुक्त होनेवाली "बम्बइया भाषा " का प्रयोग बखूबी हुआ है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उपन्यास का संबंध गद्य से है , और गद्य में भी उस गद्य से , जो लोगों की अभिव्यक्ति का माध्यम है । अतः यहां इस बात का ध्यान रखना होगा कि लेखक जिस परिवेश के लोगों का चित्रण करता है , उस परिवेश से जुड़ी हुई भाषा का प्रयोग उसे करना होगा और उसके लिए जन-जीवन से उसका गहरा नाता होना एक अ× अपरिहार्य शर्त रहेगी । परिवेश के बदल जाने से कई बार शब्दों के अर्थ भी बदल जाते हैं । जैसे -- एक शब्द है -- " छप्पनिया " । यदि गांव का कोई बूढ़ा अपने अतीत को टटोलते हुए इस शब्द का प्रयोग करता है , तो उसका अर्थ होगा संवत् 1956 का गुजरात का वह महाकाल -- दुर्भिक्ष , जो अत्यंत ही भीषण था । परंतु शिफ्ट ड्यूटी में काम करने वाला कोई कर्मचारी यदि कहता है कि "छप्पनिये" में अपने गांव जाऊंगा , तो उसका अर्थ होगा

हप्ते में मिलनेवाला छप्पन घण्टों का ओफ । इस प्रकार उपन्यास में परिवेशगत भाषा का महत्व अपरिहार्य है ।

1.02 : यथार्थ और भाषा ✗ का संबंध :

यथार्थधर्मिता उपन्यास का प्राणतत्व है । उपन्यास की जितनी भी परिभाषाएं उपलब्ध होती हैं , उनमें किसी-न-किसी प्रकार से यथार्थ को रेखांकित किया ही गया है । अतः वस्तु , चरित्र , विचार , कथोपकथन प्रभृति सभी में यथार्थ का उभरना उपन्यास में परम आवश्यक समझा जाता है । इस यथार्थ के उकेरन में भाषा की भूमिका नगण्य नहीं होती है । राल्फ फोक्स ने उपन्यास की भाषा को मानव-जीवन का गद्य कहा है , क्योंकि उसमें प्रयुक्त भाषा उन पात्रों की भाषा होती है जिनको उपन्यासकार किसी सामाजिक परिवेश चौकठे में उठाता है । उपन्यासकार की भाषा या मानक भाषा का प्रयोग तो उपन्यास में कहीं-कहीं होगा , जिन स्थानों पर लेखक अपनी कोई टिप्पणी या विश्लेषण देगा । केवल वहीं पर लेखकीय भाषा का प्रयोग होगा । यथार्थ के निर्माण में भाषा का योग स्वयंसिद्ध है । यदि उपन्यास में निरूपित पात्र अपने परिवेश की भाषा का प्रयोग नहीं करेंगे तो वे कभी भी विश्वसनीय नहीं बन पायेंगे ।

उपन्यास की वस्तु के अनुरूप भाषा का स्वरूप अपने आप बदल जाता है । शैलेश मटियानी के उपन्यास "हौलदार" में कुमाऊं प्रदेश की कथा-वस्तु को लिया गया है । अतः उसमें ऐसे अनेक शब्दों , मुहावरों और कहावतों का विनियोग हुआ है , जिसमें उपन्यास का वस्तु बिलकुल यथार्थ स्वरूप धारण कर सका है । जैसे — ` फसकिया` /वार्ताप्रिय / , ` बोकिया` /बकरा/ , ` सरभिस ` /सर्विस/ , `दोयमचित्ती` / द्विविधा / , `मुख-बोलन्ती` / बोलचाल/ , ` बोज्यू` /बाबूजी / , ठुलिब्वारी / बड़ी बहू/, ` मुंह से नहीं भेल से कहना` , ` सिर में जूता मारना` , ` क्या राज-दरबार में क्या देवदरबार में` , ` नहीं खानेवाली बहू-बेटियां तो बागेश्वर

के मेले में पकड़ी जाती है ` , `सवार सफर के लिए तैयार खड़ा है मगर घोड़ी को घास चरने से फुरसद नहीं ` , ` न आगे आनसिंग न पीछे पानसिंग टिकमसिंग की नजर अपनी ही टांग पर ` आदि आदि । [25]

आंचलिक वस्तु के कारण उपन्यास में लोक-देवताओं , उनके अवतार , उनके जंगरिये , डंगरिये आदि का चित्रण भी वहां की यथार्थ लोकभाषा में हुआ है । इस उपन्यास का हरकसिंह लोकदेवता सैमराजा का डंगरिया है । सिर को ऊपर उठाकर जब सैमराजा प्रस्थान करने लगते हैं , तब उसका देवदास उदेराम कैलाशप्रस्थानी अवथाप /छंद/ गाते हुए कहता है --

" हेर , बेला हुई अबेर , मेरे देवता , महादेवता , पद्मासनी सैमराजा । ... नरलोक में अवतार लिया , धरती धरमराज को धन्य धन्य कर गया । गोठ की गैया , गोदी के बालक , धरती मैया को कल्याणमुखी हो गया ... नाचा कूदा ... नर वानरों को मंगलमुखी हो गया ... हे मेरे आसनधारी देवता । अस्तमुखी कैलाशवासी हो जा ... कि चन्द्रमुखी रात्रि बेला में ., अपनी अवतार गाथा के अंतिम अक्षत आखरों में लगती समाधि , मुंदती पलकों में स्थान देकर सबको दाहिना हो जा मेरे स्वामी । " [26]

इस प्रकार उपन्यास का वस्तु चूंकि आंचलिक है , और उसमें कुमाऊं के लोकदेवता "सैमराजा" के अवथाप का छंद पढ़ा जाता है , अतः भाषा भी बिलकुल उसी प्रकार की , ठेठ , ली गई है ।

उसी प्रकार मटियानीजी का ही एक अन्य उपन्यास "मुख सरोवर के हंस " लोकगायक शैली में लिखा गया है । अतः उसकी भाषिक-संरचना देखने लायक है । कथागायक रमौलिया उपन्यास की कथा का प्रारंभ ही इस प्रकार करता है --

"एक समय काल ने क्या करवट , पवन ने क्या दिशा बदली कि

पंचाचुली पर्वतश्रेणी की गुरुस्थली में पंचनाम देवों की , भाइयों की भेंट , केदार की यात्रा हुई । पंचनाम देव कौन ? गोल्ल गंगनाथ , भोला महाबली हरू और सेमराजा । काली कुमाऊं , पाली पछाऊं के पांच लोकदेवता , कि पड़ती संध्या जगती भोर में , जिनके नाम की पहली धूपबाती होती है , कि पहली फूलपाती चढ़ती है , कि हम तुम्हारा नाम लेते हैं । एहो पंचनाम देवों । कथा कहने का दिवस और , निशा और , कि पहले तुम्हारी सेवा में युगलहाथ नतमाथ करते हैं , कि ऊंची अटारी , नीची पटारी पर बलता दिया जलता रहे , कि रेशम की डोर , मखमली पालने में कुसुमकण्ठी बालक झूलता रहे , कि गहरे सरोवर की नीली लहरों में खिला कमल खिलता रहे , कि हम तुम्हारा नाम लेते हैं । और शितल फुहार पड़ती , नशीली बयार चलती और ~~इझडै~~x ठण्डी पनार पड़ती रहे , कि इस कुमाऊं की धरती फूलों से महकती रहे , कि इस कथा की पावन बेला में हम तुम्हारा नाम लेते हैं । सिर से ढोक देते , पांव से लोट लेते हैं कि पड़ती संध्या जगती भोर में जिस गृहिणी ने तुम्हारे नाम का दीपक जलाया और तुम्हारे नाम की फूलपाती चढ़ाई , उसके गोठ की गैया , गोदी के बालक की उम्र बड़ी करना । जिस घर के स्वामी ने तुम्हारे नामकी पंचमुखी आरती जलाई , सूर्यमुखी शंख बजाया , कांस्य घण्टी हिलाई , दीपबाती जलाई , उसे पट्टी का पटवारी , गांव का मुखिया, जिले का कलेकटर बनाना , कि उसका रुतबा उठाना , कुनबा बढ़ाना कि हम तुम्हारा नाम लेते हैं । • 27

यहां पर कुमाऊं प्रदेश में लोकदेवताओं का आह्वान किस प्रकार किया जाता है , उन्हें किस प्रकार बुलाया जाता है , तथा उनके आगे प्रार्थना कैसे की जाती है , इसका वर्णन है जिसे वहां के लोकगायक रमौलियों की यथार्थ भाषा में प्रस्तुत किया गया है । यहां पर इसी लेखक के ही एक अन्य उपन्यास "बरफ गिर चुकने के बाद " की भाषा को हम इसलिए लेते हैं कि जिससे प्रमाणित हो कि उपन्यास की वस्तु किस प्रकार उसकी भाषा को

प्रभावित करती है, याकि भाषा उपन्यास के यथार्थ वस्तु को उकेरने में किस प्रकार अपना रुख बदलती है। "बर्फ गिर चुकने के बाद" आधुनिक भावबोध से जुड़ा हुआ एक उपन्यास है जिसमें लेखक ने स्त्री-वंचना को भाषा के स्तर पर परिभाषित करने का यत्न किया है। कथा और संवेदना की दृष्टि से इस उपन्यास की भाषा मटियानीजी के अन्य उपन्यासों की भाषा सेबिलकुल दूसरे छोर पर पड़ती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

"आप स्मरण रखें कि बिना प्रेम और भाषा के ही यात्रा पर निकल पड़ना गिद्धों की तरह पंख पसारकर उड़ान लगा आने के अलावा और कुछ नहीं। और जैसा कि मैं आप लोगों से पहले भी कह चुका हूं कि प्रेम यदि है, भाषा और कला की संभावनाओं के निकट ले जा सकने को पर्याप्त, तो सिर्फ वहां तक चलना भी एक यात्रा हो जायगा, जहां तक जा सकने की कल्पना में जा×सकता×हूं× करना चाहता हूं। मैं कह नहीं सकता कि आप इस रहस्य को जानते हैं या नहीं कि कल्पना और प्रार्थना, इन्हें सिर्फ अपने लिए करना चाहें, तो वे आपको कभी भी, न भाषा के निकट ले जायेगी न कला के। .... क्योंकि यह एक सनातन वास्तविकता है कि कल्पना और प्रार्थना प्रेम के निकट भी तभी ले जाती है जब यह दूसरों के लिए की गई हो।" [28]

तात्पर्य यह कि वस्तु-विधान के अनुरूप ही भाषा-विधान भी होता है। बल्कि यों कहना अधिक समुचित होगा कि वस्तु के निर्माण में भाषा का योग रेत व ईंट के समान होता है।

भगवतीशरण मिश्र का उपन्यास "पीताम्बरा" मीरा के जीवन पर आधृत है। उसमें लेखक ने मीरा का शैशव कैसे व्यतीत हो रहा है उसका वर्णन एक स्थान पर किया है। मीरा के पिता रतनसिंह राव दूदा से कह रहे हैं — "मैंने इसका विशेष ध्यान रखा है, मीरा की माता भी इसमें सहयोग करती है। हमने आठ कजली गायें छोड़ रखी हैं, सात कजली गायों का दुग्ध आठवीं कजली गाय को पिलाया जाता है। वह उस दुग्धाहार के अतिरिक्त कुछ नहीं लेती। आवश्यकता भी नहीं रहती,

इस आठवीं कजली गाय की विशेष सेवा-सुश्रुषा की जाती है । इसे नित्य स्नान कराया जाता है । उसके रहने के स्थान को स्वच्छ और गोमय से परिस्कृत रखा जाता है । इसके बैठने के लिए आसन का भी प्रबंध है । दासी अर्पणा नित्य प्रातः इसकी विधिवत् पूजा करती है । चंदन , अक्षत , धूप-दीप , नैवेद्य इसे अर्पित किये जाते हैं । मीरा की मां भी इस कार्य में अर्पणा को सहायता करती है , अपितु असल पूजा तो मीरा की जननी ही करती है , अर्पणा का कार्य तो मात्र पूजन सामग्री के प्रबंध तक सीमित रहता है । " 29

यहां पर उपन्यास का वस्तु ऐतिहासिक एवं राजवंश से सम्बद्ध है , अतः उसकी भाषा भी उसके अनुरूप है । उपन्यास में वस्तु , चरित्र , परिवेश , शिल्प सभी की नियोजना में यथार्थ के निर्वाह को केन्द्रस्थ किया जाता है और [illegible] यह ध्यातव्य रहे कि इस यथार्थ की निर्मिती में भाषा का योगदान महत्वपूर्ण होता है ।

कहना न होगा कि शिवानी के उपन्यासों में भी यथार्थ के उद्घाटन हेतु तदनुरूप भाषा का प्रयोग हुआ है ।

1.03 एक ही लेखक की विभिन्न भाषा-शैलियां :

जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक चरित्र होता है , ठीक उसी प्रकार प्रत्येक लेखक की एक शैली भी होती है । इसी शैली के कारण लेखक की पहचान बनती है । कई बार देखा गया है कि एकाध परिच्छेद को पढ़कर कोई बता देता है कि यह फलां-फलां लेखक द्वारा लिखा गया है , प्रेमचन्द द्वारा , जैनेन्द्र द्वारा या निर्मल वर्मा द्वारा । लेखक की एक ऐसी शैली दृढ़ हो जाती है कि उस शैली से उनके समग्र लेखन को पहचाना जा सकता है । परंतु यह बात उसकी अपनी शैली तक सीमित रहेगी । वस्तु , परिवेश , एवं चरित्र की दृष्टि से एक ही लेखक में हमें कई बार

एकाधिक गद्य-शैलियाँ उपलब्ध होती हैं । कृष्णा सोबती के उपन्यासों में "मित्रो मरजानी" तथा "जिंदगीनामा" की भाषा-शैली जहाँ पंजाब की मिट्टी की सौंधी गन्ध लेकर आयी है, वहाँ परिवेशगत अंतर के कारण "सूरजमुखी अँधेरे के" की भाषाशैली काव्यात्मक एवं प्रतीकात्मक बन पड़ी है । उभय से एक-एक उदाहरण यहाँ×××××××× द्रष्टव्य है । "जिंदगी-नामा" उपन्यास पंजाब के ग्रामीण आंचलिक परिवेश को लेकर चला है, अतः उसकी भाषागत छटा देखिए —

""चन्नी की छोटी बहन छन्नी सूरजा पर अटक गयी — "बेबेजी, सूरजा की बाहों में लाल चूड़े, चांदी के कलीरे, माथे पर दौनी, सिर पर चौंक-फूल, ऊपर किनारी के बन्दोंवाली ओढ़नी झम्म-झम्म करती । किस रंग का जोड़ा था भला उसका लालाजी ! लाल कि गुलाबी ? ... सिरमुनिया इधर तो आ । बेबे ने सिर पर प्यार फेरा — " ले देख ले लाजवन्तिये, अभी से तेरी धी का दिल अटका पड़ा है चूड़े-कंगन में । इसे मंग छोड़ जल्दी से । " [30]

"मित्रो मरजानी" की सुमित्रावन्ती उर्फ मित्रो में वासना की विपुलता है । मित्रो का पति सरदारी उसकी वासना को तुष्ट नहीं कर पाता । इस संदर्भ में उसका कथन है — " सात नदियों की तारो, तवे-सी काली मेरी माँ, और मैं गोरी-चिट्टी उसके कोख पड़ी । कहती है कि इलाके के बड़भागी तहसीलदार की मुहादरा है मित्रो । अब तुम्हीं बताओ, जिठानी, तुम जैसा सत-बल कहाँ से पाऊं-लाऊं ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता । बहुत हुआ हफ्ते — पखवारे ... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास है कि मछली-सी तड़पती हूं । " [31]

कृष्णाजी के दूसरे उपन्यास "सूरजमुखी अँधेरे के" की रत्ती का जीवन मरुभूमि जैसा है । शैशवावस्था में उस पर किए गए बलात्कार के कारण रत्ती में एक गजब का ठण्डापन आ जाता है । उसकी जिन्दगी में सोलह

पुरुष आते हैं , परंतु वे सब उसके जालिम ठण्डेपन के शिकार होकर तड़पते रह जाते हैं । अंततः उसकी यह ग्रंथि दिवाकर नामक एक विवाहित पुरुष के द्वारा टूटती है और वह उसे समर्पित हो जाती है । परंतु यहां उसके स्त्री-सहज संस्कार आड़े आते हैं और वह दिवाकर से कहती है — "मैं जुड़े हुए को नहीं तोड़ूंगी । विभाजन नहीं करूंगी । मेरी देह अब तुम्हारी प्रार्थना है दिवाकर । "[32]

अभिप्राय यह कि चरित्र एवं परिवेशगत वैभिन्य की दृष्टि से किसी एक लेखक की शैली में भी हमें शैली के नाना स्तर उपलब्ध होते हैं । शैलेश मटियानी के उपन्यासों में भी इस तथ्य को हम रेखांकित कर सकते हैं । उनके "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " , " बोरीवली से बोरीबन्दर तक " , "कबूतरखाना" जैसे उपन्यासों का परिवेश बम्बई का उच्च एवं निम्नवर्ग है । अतः उनमें बम्बइया भाषा का सहज प्रयोग मिलता है । उनके "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " में ही भाषा के कई स्तर मिलते हैं । उपन्यास में कल्लन उस्ताद का एक पात्र है जो "सूरज का सातवां घोड़ा" की शैली में कहानी का प्रारंभ यों करता है — " न सात समंदर पार का , न राजा इन्दर के दरबार का , न शहजादे शहरयार का , या साड़े तीन यार का — यह किस्सा है गांठिया-पापड़ी , उसल-पाऊं , मसालाडोसा , बटाटा-वड़ा , चालु-स्पेशियल चाय और भेलपुरी के देश बम्बई का ... इस बम्बई में , जहां न फूटपाथियों को चैन हैं न महलों को ही आराम ** — तिरिया के सिर्फ दो भेद होते हैं । ..... सुन कलंदर , देसाई-भुवन सातवां माला , कालबादेवी बम्बई-2 के शानदार फ्लेट में रहनेवाली सेठानी नर्मदाबेन और गांव पीचखोली , पोस्ट तालुका रहेंसी , जिल्हा सतारा , हाल मुकाम मकनजी बम्मनजी की चाल , खोली नंबर पंधरा , भुलेश्वर , मुम्बई-2 की गंगूबाई का यह किस्सा है । "[33]

दूसरी तरफ सेठानी नर्मदाबेन शिक्षित तथा काव्य-संस्कारों से युक्त महिला है , अतः अपने कवि-प्रेमी कृष्णकुमार से प्रेम-निवेदन करती हुई कहती है — " करसन , इससे तुम्हें अधिक ग्लानि हो सकती है , पर

मेरा शेष जीवन सुखी हो जायेगा .... मेरे असीम सुख के लिए , तुम अपनी क्षणिक दुविधा की बलि देका तो देखो ,,, तुम पहले पुरूष हो जिसे मैं अपनी सम्पूर्ण आस्था से समर्पण करने जा रही हूं .... मैं तुम्हें नारी-पुरूष के मिलन का चरम सुख दूंगी । " 34

परंतु कृष्णकुमार तो गंगूबाई केलेवाली को अपना हृदय दे बैठे थे । जब नर्मदाबेन सेठानी को इस बात का पता चलता है , तब वह गंगूबाई से कहती है -- " गंगूबाई , तने केटला नाणां जोइए ? .... मारा पासेथी लई जा .... हजार , बे हजार , त्रण हजार .... पण तु करसनबाबु छे ने ? एने साफ ना पाड़ी दे , के तु ऐनी साथे मोहबत करती नथी । .... हुं तारे पगे पडुं छुं गंगूबाई । तने हुं रहेवा माटे बांदरा मां फ्लेट आपीश , पण तु मारा करसनबाबु ने मने आपी दे ..... " 35

परंतु गंगूबाई भी नोटों के बंडल की परवाह न करते हुए जवाब देती है -- " सेठानीबाई , ही तुमची दौलत मा का नको ... या तुमचा बांदरा चा फ्लेट माका नको .... पण तो तुमचा करसनबाबू ... तो माझा मनाचा मीत गोविन्दा .... मला फक्त वोइज पाहिजे । " 36

यहां पर मटियानीजी ने भाषा के विभिन्न स्तरों का परिचय दिया है । कई बार ऐसा भी होता है कि एक ही व्यक्ति भिन्न-भिन्न लोगों से बात करते समय भाषा के विभिन्न स्तरों का प्रयोग करती है । उपरोक्त उदाहरण में नर्मदाबेन कृष्णकुमार से जो बात करती है , और गंगूबाई से जो बात करती है , दोनों में भाषा के स्तरों की दृष्टि से एक निश्चित अंतर पाया जाता है ।

"कृष्णकली" उपन्यास के प्रारंभ में स्वाधीनतापूर्व का सामंतकालीन परिवेश आया है । उसमें पन्ना एक नृत्यांगना है । उसके चरित्र का वर्णन करते हुए शिवानीजी लिखती हैं -- " पन्ना के घने काले बालों में किसी प्रकार के छल-कपट की मरीचिका नहीं थी , न उसके चिकने चेहरे पर कोई

झुर्री ही आई थी , स्वच्छ दंत-पंक्ति में पान दोख्ते का एक धब्बा भी पन्ना ने नहीं लगने दिया था , दिन-रात कत्थक नृत्य की कठोर घुरनियों ने छिपछिपी गठन को इंच भर भी इधर-उधर नहीं होने दिया था । शांत चेहरे पर कलुषित पेशे के धुंधले हस्ताक्षर ढूंढने से भी नहीं मिलते थे । जैसे किसी सुखी गृहस्थी की जीवित विज्ञापन-सी कोई लक्ष्मी-स्वरूपा गृहिणी ही उनके सम्मुख बैठी हो , ऐसा ही उसके अनन्य उपासकों को सर्वदा बोध होता था । किसको विदेशी मादक सुगंध रुचती है , किस संयमी प्रेमी को मोतियों की हल्की गमक पसंद है , कौन आमिषभोजी है , कौन वैष्णव निरामिष है , सबकुछ उसे स्मरण में रहता था । 37

यहां पर जो भाषा है वह पूर्णतया शिवानीजी की भाषा है , जो संस्कृत परिनिष्ठता एवं काव्यात्मकता लिए हुए है । परंतु यही शिवानीजी जब किसी अन्य चरित्र का कथोपकथन देती हैं , तब उनका भाषागत स्तर उस चरित्र के स्तर पर उतर आता है । "चौदह फेरे " उपन्यास में उसकी नायिका अहल्या की मां नंदी कुमाऊं प्रदेश की एक ग्रामीण महिला है । वह कलकत्ते में अपने पति के पास आई है । साथ में उसकी बच्ची अहल्या भी है । नन्दी एक पति-परित्यक्ता स्त्री है । उसका पति कर्नल आधुनिक सभ्यता में पला-बढ़ा है और उसके व्यवहार से अंग्रेजीयत टपकती है । अहल्या ने मां के घर — मामा के घर —केवल अभावों को ही देखा है , अतः पिता के घर मिठाइयों तथा बिस्कुट को वह सतृष्ण दृष्टि से देखती है । इस प्रसंग का वर्णन शिवानीजी ने नन्दी के शब्दों में इस प्रकार किया है —

"मैं इन चीनी के बर्तनों में चाय-शाय नहीं पिवे हूं , बिटिया दूध पी लेगी और चीजें उठा लो । " मां के इस सर्वथा अनुचित अन्यायपूर्ण आदेश को अहल्या नहीं सह सकी । ' नहीं , हम खायेंगे , दोनों पैर पटक-पटक कर वह सतृष्ण दृष्टि से बिस्कुट की प्लेट को देखती हुई रोने लगी । ' हां , हां हम बेबी के लिए बहुत सारी मिठाइयां भी लायेंगे ' महाराज ने कहा और प्लेट थमा दी । आग्नेय दृष्टि से अहल्या को

देखती हुई नन्दी चुप रह गई । महाराज चला गया तो अहल्या को डपट- कर कहा --" कंगली छोकरी , जैसे कभी कुछ खाया ही नहीं है , सबके सामने इज्जत उतार लेवै है , छोरी , ऐ मरी कैसी भकोस रही है । अभी- अभी तो भैया ने टेशन पर दालमोंट ले दी हैगी ।" • 38

उपरोक्त उदाहरण में बीच-बीच में लेखकीय भाषा का भी प्रयोग हुआ है । "अनुचित " , "आदेश " "सतृष्ण , "आग्नेय " आदि शब्द- प्रयोग लेखकीय शैली के उदाहरण हैं । नन्दी की भाषा पहाड़ी टोन लिए हुए है । " चाय-शाय " , "लेवै है " , "छोरी " , "भकोस " , "टेशन" आदि शब्द इसके उदाहरण हैं ।

वस्तुतः औपन्यासिक लेखन में तो भाषा के विभिन्न स्तर मिलेंगे ही , क्योंकि उपन्यास की भाषा में लेखकीय भाषा के उपरांत पात्रों की परिवेश- गत भाषा का भी समावेश हो जाता है । परंतु कई बार यह भी पाया जाता है कि विशिष्ट कालगत परिवेश का वर्णन करते हुए लेखकीय भाषा में भी थोड़ा-बहुत परिवर्तन आ जाता है । एक ही लेखक जब किसी प्राचीन पौराणिक विषय को लेकर चलता है , तब उसकी भाषा का जो स्तर होता है , वह बिलकुल वह नहीं होता , जो ग्रामीण परिवेश के सामाजिक उप- न्यास को लिखते समय होता है ।

1.04 : शिल्प-सजगता और भाषा :

उपन्यास की भाषा का आधार उसका शिल्प भी होता है । शिल्प का आग्रह अपने साथ उसके अनुरूप भाषा को भी ले आता है । उप- न्यास वर्णनात्मक हो , आत्मकथात्मक , पत्रात्मक , पात्रात्मक , आंच- लिक , व्यंग्यात्मक , मनोविश्लेषणात्मक या प्रतीकात्मक हो , तो उसकी भाषा उन-उन शिल्पों के अनुसार परिवर्तित रूप में मिलेगी ।

ऊपर शैलेश मटियानी के उपन्यास "मुख सरोवर के हंस " की चर्चा हुई है । वह उपन्यास लोक-साहित्य के शिल्प को लिए हुए है । अतः कुमाऊं

प्रदेश के कथा-गायक रमौलियों की भाषा को वहां प्रयुक्त किया गया है । उसमें आये हुए शब्द भी लोकभाषा और लोकबानी के हैं । उसका लहजा और "टोन" भी लोकबानी का है ।

शैलेश मटियानी का ही दूसरा उपन्यास "बर्फ गिर चुकने के बाद" बहुत हद तक चेतना प्रवाह एवं एब्सर्ड शैली का मिश्रण-सा प्रतीत होता है । अतः उसकी भाषाशैली भी उस प्रकार की है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

" अब अगर मैं आपको एकाएक यह बताने की कोशिश करूं कि शारदा के बायें स्तन पर सलेटी रंग के तिल थे , और उन पर निहायत भूरे रोयें उगे हुए थे तो आप इस बात पर ठठाकर हंस पड़ना चाहेंगे और इत्मीनान से कह सकेंगे कि ` हम तो पहले ही समझ गये थे कि यह निहायत `परवर्टेड` किस्म का आदमी है ! ` ..... और अगर मैं इसी क्षण यह भी बताना चाहूं कि जब मां का शवदाह हो रहा था , मैं बिजली की-सी कौंध की तरह इस स्मृति में भर गया था कि कभी मैं एक अबोध शिशु की-सी निर्द्वन्द्वता में इन्हीं क्षार होते हुए स्तनों में रहा होऊंगा । और जब तक मैं अपनी इस स्मृति में रहा , एक दुर्दान्त मृत्यु-गंध में रहा । ... तो यह एक मृत्यु की देहशत से `आब्सेस्ड` व्यक्ति की विद्रूपता लग सकती है । " [39]

यहां पर चूंकि विषय कुछ `एब्सर्डिटी` लिए हुए है , अतः उसकी भाषा में भी उसके दर्शन होते हैं ।

श्रीलाल शुक्ल कृत "राग दरबारी" एक व्यंग्यात्मक उपन्यास है । हिन्दी के कतिपय आलोचक उसे व्यंग्यात्मक उपन्यासों का प्रतिमान मानते हैं । [40] इस उपन्यास की शैली आद्यन्त व्यंग्यात्मक है । इसमें प्रसंग , चरित्र, शब्द आदि को लेकर व्यंग्य-यात्रा चल पड़ती है । जैसे एक बार पंडित राधेलाल `काना ` की बात चल पड़ती है । पं. राधेलाल की पत्नी को शिवपालगंज गांव में सब `कुतिया ` कहते हैं । पं. राधेलाल `काना ` उस

"कुतिया" को कैसे ब्याह लाये , उसकी बात चल रही थी कि लेखक को स्मृति में "परंपरा " शब्द कौंध जाता है , और फिर चल पड़ती है लेखक की व्यंग्य-यात्रा । यथा --

" यह हमारी प्राचीन परंपरा है , वैसे तो हमारी हर बात प्राचीन परंपरा होती है , कि लोग बाहर जाते हैं और ज़रा-ज़रा सी बात पर शादी कर बैठते हैं । अर्जुन के साथ चित्रांगदा आदि को लेकर यही हुआ था । यही भारतवर्ष के प्रवर्तक भरत के पिता दुष्यन्त के साथ हुआ था , यही ट्रिनीगार्ड और टौबेको , बर्मा और बैंगकौंक जाने वालों के साथ होता था , यही अमेरिका और योरोप जानेवालों के साथ हो रहा है । और यही पं. राधेलाल के साथ हुआ । अर्थात् अपने मुहल्ले में रहते हुए जो बिरादरी से एक इंच भी बाहर जाकर शादी करने की कल्पना मात्र से बेहोश हो जाते थे , वे भी अपने क्षेत्र से बाहर निकलते ही शादी के मामले में शेर हो जाते हैं । अपने मोहल्ले में देवदास पार्वती से शादी नहीं कर सका और एक समूची पीढ़ी को कई वर्षों तक रोने का मसाला दे गया । उसे विलायत भेज दिया जाता तो निश्चय ही बिना हिचक किसी गोरी औरत से शादी कर लेता । बाहर निकलते ही हम लोग प्रायः पहला काम यह करते हैं कि किसीसे शादी कर डालते हैं और फिर यह सोचना शुरू कर देते हैं कि हम यहां क्या करने आये थे ? तो पं. राधेलाल ने भी , सुना जाता है , एक बार पूरब जाकर कुछ करना चाहा था , पर एक महीने में ही वे इस "कुतिया" से शादी करके शिवपालगंज वापस आ गये थे । " 4।

उक्त उपन्यास के व्यंग्यात्मक रूपबंध के कारण उसमें जो कहावतें और मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं , वे भी उसके व्यंग्य शिल्प को अधिक उभारते हैं । जैसे कहावतों में निम्नलिखित कहावतें मिलती हैं --

/1/ अखाड़े का लतमरुआ भी पहलवान हो जाता है । /2/ इधर से आग खाओगे तो उधर से अंगारे निकालोगे । /3/ कल के जोगी

चूतड़ तक जटा । /4/ घोड़े की लात और मर्द की बात कभी खाली नहीं जाती । /5/ बीस लड़कों के बाप को बताना कि औरत क्या चीज है । /6/ मास्टर होकर मार खाने से कहाँ तक बचोगे ? .... उसी प्रकार कुछ मुहावरे हैं , जैसे मेढ़क को जुकाम हो जाना , आसमान में बांस खोसना, जवानी पर पिल्ले मूतना , युधिष्ठिर का बाप बनना । यहाँ तक कि कुछ उपमानों का चुनाव भी व्यंग्य विधा के अनुरूप हुआ है । जैसे — शहर का आदमी =सुअर का लेंड , लटका हुआ मुंह == झोला , वर्तमान शिक्षा पद्धति = रास्ते में पड़ी हुई कुतिया , उरोज = गले के नीचे के दो ऊँचे-ऊँचे पहाड़ ।[42]

मनोवैज्ञानिक तथा लघु उपन्यासों में प्रतीकात्मकता , संक्षिप्तता, संकेतात्मकता , एकवस्तु-अभिमुखता जैसे गुण पाये जाते हैं । उनकी भाषा भी काव्यात्मकता लिए हुए रहती है । निर्मल वर्मा वैसे तो कथाकार , निबंध-लेखक एवं आलोचक के रूप में , अर्थात् गद्य-लेखक के रूप में ख्यात हैं ; परंतु उनके भीतर के कवि के दर्शन करने हों तो उनके उपन्यासों और कहानियों में कर सकते हैं ।उदाहरणतया उनके उपन्यास "वे दिन " में हमें भाषागत नये प्रयोग एवं अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता के दर्शन होते हैं । उसमें रंग और गंध के कई उपमान मिलते हैं । उसमें कहीं "नीला आलोक" [43] है , तो कहीं "सपने-सा मटमैला-सा चमकीलापन [44] । कहीं सुनहरा और हवा में कांपता हुआ वायोलीन का स्वर [45] है ; कहीं "शुरू पतझड़ में पकी हुई घास की गंध " [46] है ; तो कहीं "स्कर्ट की कोमल-सी सरसराहट [47] है । उसमें शाम की बरफ "सफेद सिकुड़ी हुई बिल्लियों सी लेटी हुई मिलती है[48] ; तो मिलता है एक ऐसा अकेलापन — जो दुःख , पीड़ा , आँसुओं से बाहर है और जो महज जीने के नंगे बनैले आतंक से जुड़ा है .... जिसे कोई दूसरा व्यक्ति निचोड़ के बहा नहीं सकता । [49]

ठीक उसी प्रकार शिवानी द्वारा प्रणीत "कृष्णकली" उपन्यास में भी लेखिका की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के दर्शन होते हैं । डा. पारुकांत देसाई ने उनकी इस विशेषता को रेखांकित करते हुए उनकी भाषा

एवं शिल्पगत नवीनता को विश्लेषित किया है । यथा — "सद्यःजात पुत्री के मृत्यु पश्चात् पन्ना के अंक में जब रोजी पार्वती और पठान से उत्पन्न कन्या-रत्न को डाल देती है, तब 'ब्रेस्ट-पंप' से सुखायी गई मातृ-त्व की सूखी लता फिर से पल्लवित हो उठती है । पन्ना का प्रेमी विद्युत-रंजन मजूमदार प्रौढ़ होते हुए भी आकर्षक व्यक्तित्व का स्वामी है । उन दोनों के संबंध में एक स्थान पर शिवानी ने लिखा है —' पन्ना, क्या तुम इजिप्शियन ममी के ताबूत में बंद रही थी ? मुझे देखो, एकदम बूढ़ा हो गया हूं न ? परंतु बूढ़ा होने पर भी यह व्यक्ति अभी भी सुंदरी प्रौढ़ा के हृतपिंड को घड़ी के पेण्डुलम-सा हिला रहा था, वह क्या स्वयं इससे छिपा था ?' यहां हृतपिंड को घड़ी के पेण्डुलम-सा हिलाना' जैसे नवीन मुहावरे के प्रयोग द्वारा शिवानी ने भाषिक शिल्प को सुदृढ़ ही किया है । पति के घर-दामाद होने की स्थिति में जया के तेजोभंग का संकेत लेखिका ने उसे ' पोर्टफोलियोविहीन मंत्री ' की उपमा दी है । जब कुछ सरकारी अफसर कली की कार की तलाशी लेना चाहते हैं, तब कली हंसते हुए कहती है कि ' वाह सरदारजी आप भी उतर आइये ना ! सबसे कड़ी तलाशी इन्हीं की लीजियेगा सर, क्या पता दाढ़ी और जूड़े के जटाजूट में सोने की कोई भागीरथी छिपाए हुए बैठे हों । ' यहां "जटाजूट ' में 'सोने की भागीरथी ' का प्रयोग करते हुए लेखिका ने पौराणिक संदर्भ को नवीन स्थितियों में रखकर भाषा-प्रयोग द्वारा व्यंग्य को गहराया है । ऐसे-ऐसे तो अनेक प्रयोग इस उपन्यास के प्रत्येक पृष्ठ पर मिलते हैं । " 50

उपर्युक्त उदाहरणों के प्रकाश में यह असंदिग्धतया कहा जा सकता है कि औपन्यासिक शिल्प एवं भाषा के बीच चोली-दामन सा संबंध है । शिवा-नीजी में भी शिल्पगत वैविध्य के साथ तदनुरूप भाषागत वैविध्य उपलब्ध होता है ।

1.05 : चरित्र और भाषा :

उपन्यास कथा-साहित्य की विधा है, अतः कथावस्तु उसका प्रमुख तत्व है । शिशिर बंदोपाध्याय ने उसे [कथावस्तु को] उपन्यास की

"बेक-बोन" कहा है । यदि कथावस्तु उपन्यास का "अस्थिपंजर " (स्केलेटन) है , तो पात्र उसके ज्ञानतंतु । कथा होगी तो पात्र तो आयेंगे ही । यह दोनों तत्व परस्पराश्रित है । उपन्यास के पात्र सजीव , प्राणवंत , वास्तविक एवं रोचक होने चाहिए । "प्रोबेबल कैरेक्टर्स " उपन्यास की विश्वसनीयता को बढ़ाते हैं । अतः उपन्यास के पात्र हमारी दुनिया के "लोगों" से होने चाहिए । कदाचित् इसीलिए ई. एम. फारर्स्टर ने उपन्यास के पात्रों के लिए "पिपल" शब्द का प्रयोग किया है ।[51]

ठीक इसी प्रकार एक अन्य आंग्ल औपन्यासिक आलोचक राल्फ फोक्स महोदय ने अपने आलोचनात्मक ग्रंथ का नाम ही "नोवेल एण्ड द पिपुल " रखा ~~धर~~ है । अभिप्राय यह कि उपन्यास में आनेवाले पात्र अपनी परिवेशगत यथार्थता को लेकर आने चाहिए । पात्रों की इस यथार्थ सृष्टि में भाषा का योगदान नगण्य नहीं है , क्योंकि अंततोगत्वा पात्र की भाषा ही उसके चरित्र की अच्छी व्याख्याता हो सकती है । कोई भी मनुष्य जब तक बोलता नहीं है , तब तक उसके अंतर्निहित `आइसबर्ग ` से चरित्र को जाना नहीं जा सकता । एक काठियावाड़ी दुहे में कहा गया है --

"कोयलड़ी ने काग , वाने वरताये नहीं
एनो जीभलडीए जवाब , साचुं सोरठियो भणे । "

अर्थात् कोयल और कौए का वर्ण एक होता है , अतः वर्ण द्वारा उन्हें पहचानना कठिन होता है ; परंतु जब वे बोलते हैं तब दोनों का अंतर स्पष्ट हो जाता है । इसलिए श्रीलाल शुक्ल ने "राग दरबारी" उपन्यास में लिखा है कि जो आदमी कम बोलता है वह कम मूर्ख बनता है । [52]

कोई भी पात्र के भाव , भाषा और विचार उसके चरित्र के अनुरूप होंगे । इस संदर्भ में एक कहानी प्रचलित है कि एक आदिवासी जाति की स्त्री के साथ एक बनिया भागकर बम्बई चला जाता है । बम्बई में उसकी गृहस्थी और कारोबार दोनों बराबर जम जाते हैं । कई वर्षों बाद उसकी बिरादरी के दो-तीन व्यापारी उस सेठ के

अतिथि बनते हैं । भोजन परोसते हुए सेठानी के मुंह से अचानक निकल जाता है -- " ल्यो ने एक रोटली , आ कुतराना कौन जेवी रोटली मां हुं खाडुं-मोरुं थै जवानुं है ? " अर्थात् कुत्ते के कान-सी छोटी-सी रोटी में क्या हो जायेगा ? यहां पर रोटी की तुलना कुत्ते के कान से सेठानी जब करती है , तो आगंतुक अतिथि स्तंभित हो जाते हैं और ताड़ जाते हैं कि हो न हो सेठानी किसी निम्न जाति की होनी चाहिए । सचमुच की सेठानी के मुंह से रोटी के लिए ऐसी उपमा निकल ही नहीं सकती है ।

अभिप्राय यह कि मनुष्य लाख प्रयत्न करे , परंतु उसके भीतर की यथार्थता भाषा में आये बिना रह नहीं सकती । केवल जाति और संस्कार ही नहीं , मनुष्य के आंतरिक गुण , जैसे अभिमान , करूणा , क्रोध इत्यादि भी भाषा के द्वारा ही अभिव्यक्त होते हैं । रामदरश मिश्र कृत उपन्यास "पानी के प्राचीर " की संध्या गोरखपुर जिले के पांडेपुरवा गांव से शहर क्या आ जाती है , ग्रामीण जीवन को ही घृणा की नजर से देखने लगती है । अपने बचपन के साथी निरू को वह कहती है -- " गांव में क्या रखा है निरू , देखो ना ! सखियों के नाम पर गेंदा , चमेली जैसी आवारा छोकरियां हैं । गांव के लौंडे हैं जो बिंदिया चमाइन के पीछे पड़े रहते हैं और गांव की लड़कियों पर बुरी निगाहें गड़ाए फिरते हैं । गांव के लोग चोरी करते हैं , खेत उखाड़ते हैं , घर फूंकते हैं , चुगली करते हैं । ऐसे गांव में क्या रखा है ? और तो और दिल बहलाने के लिए कोई तरीका नहीं । किसीसे बात करो तो वह दूसरों की शिकायत करता है । औरतें हैं तो उन्हें एक-दूसरे के घर की पोल खोलने में ही मज़ा आता है । " [53]

ठीक इसके विपरीत मिश्रजी के ही उपन्यास "आदिम राग " के प्रोफेसर शील गुजरात के एक शहर में रहते हैं , परंतु उन्हें अपने गांव का जीवन बार-बार याद आता है । शील को शहर पराया-सा लगता है । वहां के लोग पराये लगते हैं । वे बार-बार अपने ~~बरंब~~ गांव और अपने लोगों को याद करते हैं । लेखक ने उनके मनोगत भावों को चित्रित करते

हुए लिखा है -- " प्रायः {वह} शहर से छूटकर बाहर जाना चाहता है, नदी के उस पार, जहां खेत हैं, गांव हैं, पगडण्डियां हैं, मेले हैं, त्यौहार हैं, जंगल हैं, पहाड़ हैं। .... उसे याद आ गई शरद की धूप रस्सियों पर झूलती मक्के की पक्की-पक्की बालियां, धान के खेतों की गंध, सिलनभरी संदूकों से बाहर निकलकर एक विचित्र महक छोड़ती स्त्रियों की धराऊ साड़ियां .... जुते हुए खेतों से उठती शरद की हल्की-हल्की अनुभूति ... और एक मासूम आर्द्रता से कंपित झुकती हुई शाम .... उसे बहुत दिन हो गए अपने गांव की रामलीला देखे हुए। गुजरात में राम-लीला नहीं होती। न यहां दशहरा मनता है, न होली। यहां तो बस दिवाली की धूमधाम देखने लायक है। दिवाली के पन्द्रह दिन पहले से पटाखों के मारे सोना हराम हो जाता है। " 54

यह भाषा प्रोफेसर शील के सोच की भाषा है, परंतु यह उतना ही यथार्थ है कि मनुष्य के सोच की भाषा भी उसकी वास्तविक भाषा ही होती है। यहां पर जो भाषा प्रयुक्त हुई है उससे प्रोफेसर शील की प्रकृति, संस्कार, ग्रामीण जीवन के प्रति मुग्धता का भाव तथा उनके भीतर की स्मृतिजीविता के दर्शन होते हैं। यहां मेरी स्मृति में मेरे निर्देशक महोदय डा. देसाई साहब के एक गीत की दो पंक्तियां कौंध रही है, जिन्हें उद्धृत करने का मोह मैं संवृत्त कर नहीं पाती --

"मुझको मेरी यादों का वह गांव सोने नहीं देता
जख्मी जिगर हालात पर रोने नहीं देता " 55

भगवतीशरण मिश्र के उपन्यास "नदी नहीं मुड़ती" की सुषमा एक तेज-तर्रार स्कोलर लड़की है। उसे अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व और पहचान का अभिमान है। जब वह बी.ए. में पूरी यूनिवर्सिटी में प्रथम आती है और उस उपलक्ष्य में सहकारिता-मंत्री के सभापतित्व में एक समारोह होता है, जिसमें मंत्रीजी के भाषण के उपरांत सुषमा को जब गाने के लिए कहा

जाता है , तब वह बुरी तरह से चिढ़ जाती है । सबके आग्रह पर वह गा तो देती है , परंतु बाद में अपने वक्तव्य में वह मंत्री-महोदय तथा आयोजकों को खरी-खरी सुनाती है । यथा --

"मंत्री महोदय ने मेरे रूप की प्रशंसा की और सोने में सुगंध की बात भी की । पता नहीं कब तक औरत के रूप और कंठ के बहाने से उसे छला जाता रहेगा ? मैं जानना चाहती हूँ कि क्या केवल पढ़ाई के क्षेत्र में मेरी उपलब्धि ही पर्याप्त नहीं है ? यदि है तो मुझे भी मंत्री महोदय की तरह भाषण ~~देने~~ देने के लिए ही क्यों नहीं कहा गया ? मुझे गाने को बाध्य किया गया और मेरे रूप के उल्टे-सीधे वर्णन हुए । क्या मंत्री महोदय इसलिए मंत्री हैं कि वे बड़े रूपवान हैं अथवा उनके कंठ में कोकिल के कंठ का वास है ? उनकी बुद्धि ने उन्हें मंत्री बनाया है या उनके बाँके-सलोने रूप ने ? यदि पुरुष मात्र बुद्धि के बल पर आगे बढ़ सकता है तो औरत के लिए यह रूप और कंठ की बैसाखी क्यों चाहिए ? आशा है कि आप आगे से किसी लड़की को उसकी बुद्धि के सम्मान में आयोजित समारोह में उसके अपने कंठ का करिश्मा दिखाने को बाध्य नहीं करेंगे और उसकी रूप-प्रशंसा में व्यर्थ फूलों का पथ बना उसको काँटों में नहीं घसीटेंगे ।" 56

यहाँ सुषमा ने जिस भाषा का प्रयोग किया है उसमें उसके स्वभाव की उग्रता , प्रखरता , बौद्धिकता तथा नारी-सम्मान के भाव का आकलन भलीभाँति हुआ है । पाठक सुषमा के इस कथन से उसके व्यक्तित्व से सुचारु रूप से परिचित हो सकता है ।

"राग दरबारी" उपन्यास के वैद्यजी एक पक्के , मक्कार , धूर्त , घाघ , मोटी चमड़ी के आजकल के बेशर्म राजनीतिक नेताओं के प्रतिनिधि हैं । शिवपालगंज में वे सर्वेसर्वा हैं । वहाँ की सभी संस्थाओं पर वे काबिज़ हो गये हैं । एक बार उनके को-ऑपरेटिव युनियन में ग़बन हो जाता है । वस्तुतः यह ग़बन पूर्व आयोजित था और वैद्यजी के इशारों पर ही हुआ था । इस प्रसंग को लेकर शनिचर प्रिंसिपल साहब के कानों में कुछ कहता

है , तब वैद्यजी कड़ककर बोलते हैं — "क्या स्त्रियों की भाँति फुस-फुस कर रहा है ? को-ओपरेटिव में ग़बन हो गया तो कौन-सी बड़ी बात हो गई ? कौन-सी युनियन है जिसमें ऐसा न हुआ हो ? ..... (कुछ रुककर वे समझाने के ढंग से बोले) हमारी युनियन में गबन नहीं हुआ था , इस कारण लोग हमें संदेह की दृष्टि से देखते थे । अब तो हम कह सकते हैं कि हम सच्चे आदमी हैं । ग़बन हुआ है और हमने छिपाया नहीं है । जैसा है वैसा हमने बता दिया है । " [57]

शिवानीजी ने भी अपने उपन्यासों में चरित्रानुरूप भाषा का प्रयोग किया है । उसकी व्याख्या तो अगले अध्यायों में यथेष्ट स्थान पर होगी , परंतु यहां उनके उपन्यास "कृष्णकली" से एक उदाहरण द्रष्टव्य है जिसमें भाषा के प्रयोग से चरित्र के परिवेशगत संस्कारों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । उपन्यास में पहाड़ी परिवारवाली अम्मा कृष्णकली को बहुत ही चाहती है । एक बार कली सिलोन जाने वाली थी , तब अम्मा उसे साग्रह खूब सारे व्यंजन खिलाती है । इस पर कली हंसते हुए कहती है — "लगता है कल प्लेन में ही अपच से मरूंगी अम्मा । " [58] इस पर अम्मा कली को डांटते हुए कहती है — " चुप कर इतनी दूर जा रही है और ऐसी अलछनी बानी मुख से निकाल रही है । मरे तेरे दुश्मन , मेरा मन तो न जाने कैसा कर रहा है । वहां तो सीताजी को भी राच्छसियों ने घेर लिया था । उन्हें छुड़ाने जैसे रामजी आये थे , भगवान करे तुझे छुड़ाने भी कोई आ जाये । " [59]

इस पर कली अम्मा को छेड़ते हुए कहती है — " जिन रामजी को छुड़ाने मैं बुलाऊंगी उनका नाम सुनकर फिर क्या तुम उन्हें आने दोगी अम्मा ? फिर तो शायद तुम अपने चौके से अभी बाहर खदेड़ दोगी । " [60]

कली की इस बात पर अम्मा का चेहरा न जाने कैसा हो गया । कहने लगी — " क्योंरी , क्या कहीं किसी मुसल्ले किरीस्तान से तो शादी नहीं कर रही है ? " [61]

पहाड़ी अम्मा और कली के बीच के उपर्युक्त संवाद से दोनों की चरित्रगत विशेषताएं प्रकट होती हैं । इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों से यह भलीभांति निष्पादित होता है कि चरित्र-निर्माण में भाषा का योगदान अपरिहार्य है । चरित्रानुरूप भाषा का प्रयोग औपन्यासिक कला का एक महत्वपूर्ण अभिलक्षण माना जायेगा ।

1.06 : परिवेश और भाषा :

उपन्यास में परिवेश का तत्व बहुत ही महत्वपूर्ण होता है । उसे देशकाल या वातावरण भी कहते हैं । उपन्यास का उद्देश्य मानव-चरित्र का चित्रण होता है, परंतु मनुष्य बहुधा देशकाल की निपज होता है । "अंग्रेज स्वभावतः रीजर्व्ड, अमेरिकन व्यवसायी, जर्मन वैज्ञानिक एवं भारतीय धर्मभीरू होता है । गुजरात में हिसाबी के लिए 'अमदावादी' और मनमौजी या रंगीले व्यक्ति के लिए 'सुरतीलाला' जैसे शब्द-प्रयोग मिलते हैं । स्थल की भांति काल या समय भी व्यक्ति के वैचारिक धरातल को प्रकाशित करता है । सामंतकालीन व्यक्ति का चिंतन गांधीवादी नहीं हो सकता । वातावरण वह फ्रेम है जिसमें उपन्यास की कथावस्तु रूxxx रूपी फोटो को रखा जाता है । जिस प्रकार बिना अंगूठी के नगीना शोभा नहीं दे सकता, उसी प्रकार बिना देशकाल के पात्रों का व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं होता है । और घटनाक्रम को समझने लिए भी इसकी आवश्यकता रहती है । प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार दोस्त्योवस्की ने एक स्थान पर लिखा है कि पात्र इतने यथार्थ हों कि हम उनमें अपने आप को रख सकें और वातावरण इतना यथार्थ हो कि हम उसमें चल-फिर सकें ।" [62]

अभिप्राय यह कि उपन्यास में यथार्थ परिवेश के आकलन द्वारा उसको अधिक विश्वसनीय एवं जीवंत बनाया जा सकता है । कथा-शैथिल्य के रहते हुए भी बहुत से उपन्यास अपने यथार्थ परिवेश के कारण महत्वपूर्ण उपन्यासों में स्थान पा चुके हैं । "रंगभूमि", "मैला आंचल", "जिंदगीनामा" आदि ऐसे ही उपन्यास हैं । यहां यह उल्लेख्य होगा कि इस

यथार्थ परिवेश के निर्माण में भाषा का योग अपरिहार्य माना जायेगा । क्योंकि उपन्यास में निरूपित पात्र अपने परिवेश की भाषा को लेकर आयेंगे , तभी वे अधिक विश्वसनीय , जीवंत एवं संवेद्य बन पड़ेंगे । यहां पर कुछेक उदाहरणों के द्वारा इसे स्पष्ट करने का अभिगम रखा गया है । डा. भगवतीशरण मिश्र कृत "पुरुषोत्तम " उपन्यास में महाभारतकालीन परिवेश है । इसमें एक स्थान पर कृष्ण और कर्ण के संवाद आते हैं ; इन दोनों पात्रों की गणना धीरोदात्त पात्रों में हो सकती है । अतः भाव भी उस परिवेश के अनुरूप आये हैं —

" " इस विकट घड़ी में जब संग्राम किसी भी क्षण आरंभ हो सकता है , आप यहां कैसे प्रकट हुए केशव ? "

" मैं एक बार पुनः तुम्हारे यहां याचक बनकर आया हूं ।" श्रीकृष्ण ने अपनी बात रखी ।

कर्ण मंद मंद मुस्कुराया , " आप जानते हैं कि कर्ण के के यहां से कोई याचक रिक्त हाथ नहीं लौटता , इसलिए आप सदा याचक की मुद्रा में आते हैं । पर आप भूल जाते हैं कि औरों की तरह मैं भी आपको नर नहीं नारायण ही मानता हूं और नारायण की याचनापूर्ति नहीं कर पाने की मुझे कोई ग्लानि नहीं होती , भला एक अदना-सा आदमी एक ईश्वर की अभिलाषा की पूर्ति में कहां तक समर्थ हो सकता है ? "

" तो तुम इस बार भी मुझे निराश लौटाने को ही कृत-संकल्प बैठे हो ? " श्रीकृष्ण ने सस्मित स्वर में कहा ।

" अभी तो आपने अपना उद्देश्य बताया नहीं ऋषिकेश । " कर्ण ने निवेदन किया । उसके हाथ अब भी जुड़े थे ।" [63]

उपर्युक्त कथोपकथनों में कर्ण और कृष्ण के संवादों की भाषा ही नहीं , प्रत्युत बीच-बीच में प्रयुक्त होनेवाली लेखकीय टिप्पणियां भी उपन्यास में निरूपित कालगत परिवेश के अनुरूप हैं ।

४ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रणीत "चारुचन्द्रलेख" उपन्यास 12वीं-13 वीं शताब्दी के भारतीय समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है । इसमें लेखक ने बताया है कि जब भारतवर्ष विदेशी आक्रमणों से पदाक्रान्त हो रहा था , तब देश की प्राण-शक्ति मंत्र-तंत्र , भूत-वैताल , डाकिनी-शाकिनी , रिद्धि-सिद्धि , सुंदरी-साधना , मोहन और उच्चाटन में लोप हो रही थी । एक स्थान पर गुरु गोरक्षनाथ अमोघवज्र नामक वज्रयानी सिद्ध को चतुश्चन्द्र , पंच-पवित्र , पंचमकार आदि की साधना की निर्वियता और व्यर्थता बताते हुए उसे बुरी तरह से फटकारते हैं —

" अब भी तुम इस धपले में पड़े हो अमोघ ? हमारी आंखों के सामने गजनवी से साकल (सियालकोट) तक के समस्त विहार और रत्न-स्तूप विध्वस्त हो गये , सोमेश्वर तीर्थ लूट गया , इसीपत्तन में ईंट से ईंट बज गई , नालंदा और औदन्तपुरी अब भी जल रही हैं , और तुम्हारी यह जादूगरी की साधना अब भी अबाधित गति से चल रही है ? " [64]

यहां पर आचार्य द्विवेदीजी ने समीचीन ऐतिहासिक परिवेश के निर्माण के लिए तदनुरूप भाषा का प्रयोग किया है । "साकल" , "रत्न-स्तूप" , "सोमेश्वर-तीर्थ " इसीपत्तन ; अबाधित "जैसे शब्द उसी उद्देश्य से प्रयुक्त हुए हैं ।

निर्मल वर्मा कृत "वे दिन " उपन्यास महायुद्धोत्तर काल के चैकोस्लोवेकिया के प्राग शहर के परिवेश को लेकर आया है । अतः यहां प्राग के विदेशी परिवेश को रूपायित करने की चेष्टा लेखक ने की है । इसमें प्राग के इजेरा , पेलिकोन , रिल्के रेन्देवु [65] , वेन्सलेस्क्वायर , लारेन्तो चर्च , सेंट जोसेफ स्क्वायर आदि स्थानों का वर्णन लेखक ने किया है । शीत प्रदेश होने के कारण प्राग में मद्यपान चाय-काफी की तरह चलता है । "वे दिन " में ही प्रायः एक दर्जन शराबों के नाम मिलते हैं । जैसे — वोड्का , स्लिवोबीत्से , बीयर , शेरी , कोन्याक , स्लोवोकीयन , ड्राय-मार्टिनी , तोकाय आदि आदि । एक स्थान पर कोन्याक नामक शराब

की विशेषता भी वर्णित है , यथा — " कोन्याक अद्भुत चीज़ है , और चीज़ें प्यास बुझाती हैं , कोन्याक उससे खेलती है , और वह खलती नहीं है ... वह खोलती है दिन भर के जमा किए हुए शब्दों को । "66

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित कृत "मुरदाघर" बम्बई की झोंपड़पट्टी के जघन्य एवं घृणित जीवन को चित्रित करता है । उसमें दारूवाले , मटका-वाले , जुआ वाले , चोर-उचक्के , सस्ती वेश्याएं और उनके दलाल रहते हैं । एक स्थान पर हीरा नामक वेश्या पुलिस की नीतियों का पर्दाफाश करते हुए कहती है — " पुलिस लोगोंन का धाड़ होयेंगा आज फिर ... कइसा मालुम पड़ा तेरेकु ? .... वो दारूवाला किस्तैया और वो मटका-वाला .... दोनों चले गया इधर से .... किस्तैया दारू का सब पिपा हटा दिया , मटकावाला भी अपना कागद-वागद लेके चले गया । .... ये साला लोग पुलिसलोगकु हफ्ता देता ना ! वो इनकु पहेला से बोलके रखता । " 67

यहां पर बम्बई की झोंपड़पट्टी के परिवेश को चित्रित करने के लिए जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग हो सकता है , लेखक ने किया है ।

शिवानी के उपन्यासों में भी हमें परिवेश के अनुरूप भाषा का प्रयोग मिलता है , जिसकी विस्तृत चर्चा आगे के अध्यायों में यथास्थान होगी , अतः यहां केवल अपने मत की पुष्टि के लिए एक ही उदाहरण दिया जा रहा है । शिवानी के उपन्यास "चौदह फेरे " में एक स्थान पर एक पंजाबी के चरित्र का चित्रण हुआ है । अतः लेखिका ने पंजाबी परिवेश की भाषा का प्रयोग किया है । यथा — "ज्ञानकौरे , जा कुछ रोटी-सोटी ले आ , यह बेचारी तो भूखी होगी । ज्ञानकौर भागकर एक स्टील की बड़ी-सी थाली में कुछ तंदूरी रोटियां , बैंगन का भर्ता और सूखी दाल लेकर आ गई । " 68

यहां भाषा का "टोन" और "लहजा" पूर्णरूपेण

पंजाबी परिवेश को दृष्टिगत करने वाला है । अभिप्राय यह कि औपन्यासिक परिवेश के निर्माण में भाषा एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है । लगभग आधे-पौने परिवेश का निर्माण तो केवल भाषा-कर्म के द्वारा ही संपन्न हो जाता है । यही कारण है कि उपन्यास-लेखन में वही लेखक सफल हो सकता है , जिसका लोगों से जीवंत संपर्क हो ।

1.07 : शिवानी के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय :

प्रस्तुत शोध-कार्य शिवानी के उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा से सम्बद्ध है , अतः यह आवश्यक हो जाता है कि उनके उपन्यासों पर कुछ प्रकाश डाला जाय , ताकि उनकी भाषा पर विचार करने में सुविधा हो । पहले एकाधिक xxxx बार निर्दिष्ट किया जा चुका है कि उपन्यास का वस्तुविधान , चरित्र-सृष्टि तथा परिवेश इत्यादि उपन्यास की भाषा को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित करते ही हैं । "कबूतरखाना" , "मुरदाघर", "चारुचन्द्रलेख" , "राग दरबारी" , "नदी के द्वीप" , "कुरु कुरु स्वाहा " या सद्य प्रकाशित "खिलेगा तो देखेंगे " {विनोदकुमार शुक्ल} जैसे उपन्यासों की भाषा-मुद्रा एक विशिष्ट प्रकार की क्यों है , उसे तब तक नहीं समझाया या विश्लेषित किया जा सकता , जब तक उसके वस्तु-विधान और परिवेश तथा लेखकीय उद्देश्य को चिन्हित नहीं किया जा सकता । अतः यहाँ शिवानीजी के उपन्यासों के वस्तुविधान पर बहुत संक्षेप में विचार किया जा रहा है ।

कृष्णकली :

शिवानीजी का एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है । स्वाधीनता-पूर्व काल से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल के कुछ वर्षों तक उसका कालगत फलक विस्तृत है । उसमें सामंतकालीन , राजनीतिक और आधुनिक उच्चवर्गीय नगरीय जीवन के कतिपय आयामों को रेखांकित किया गया है । मुखपृष्ठ पर दिए गए वक्तव्य के अनुसार "कृष्णकली" शिवानी की लौहसंकल्पिनी मानस-संतान है । " एक अद्भुत चरित्र जो अपनी जन्मजात ग्लानि और

अपानवता की कर्दम में प्रस्फुटित होकर कमल-सा फूलता है , सौरभ से महकता है , और अपने मादक पराग से अपने सारे परिवेश को मोहाच्छन्न कर देता है । " 69

उपन्यास के प्रारंभिक अंशों में स्वतंत्रता-पूर्व के देशी रजवाड़ों की विलासिता को चित्रित किया गया है । मुनीर एक प्रसिद्ध नृत्यांगना है । उसकी तीन बेटियां हैं -- माणिक , हीरा और पन्ना -- जो क्रमशः नेपाल के राणा , लाटसाहब के हब्शी नौकर रौबी और लाटसाहब के ए.डी.सी. रोबर्टसन से उसे प्राप्त हुई हैं । मुनीर और हीरा की एक अकस्मात में मृत्यु हो जाती है । अतः माणिक अपने मातृ-व्यवसाय को अंगीकृत कर लेती है । नृत्यांगना होते हुए भी पन्ना विद्युतरंजन मजूमदार के अतिरिक्त और किसी से प्रेम-संबंध जोड़ती नहीं है । मजूमदार से उसे गर्भ रहता है । अतः वह अल्मोड़ा चली जाती है । वहां उसकी पुत्री क्षणिक अतिथि होकर चल बसती है , परंतु डा. पैदरिक {रोजी} उसकी गोदी में कुष्ठरोग से पीड़ित पार्वती और पठान की लड़की को डाल देती हैं , यही है कृष्णकली । कली का शैशव पीली कोठी में बीतता है । बाद में उसे अल्मोड़ा के कोन्वेण्ट स्कूल में भर्ती करवा दिया जाता है । अपने जन्म और पिता के नाम को लेकर कली परेशान रहती है । बहुत बाद में उसे अपने जन्मगत रहस्य का पता चलता है । कली भटक जाती है । अद्वितीय सुंदरता , स्मार्टनेस और कान्वेण्ट की अंग्रेजी-शिक्षा के कारण उसे अच्छी विदेश कंपनियों में नौकरियां मिलती हैं । एकाध बार तस्करी के काम में भी फंस जाती है । वाणी सेन , विवियन की आण्टी, पहाडी परिवारवाली अम्मा आदि से उसे मां का सच्चा प्यार मिलता है, परंतु वह पन्ना से खींची-खींची ही रहती है । पहाड़ी परिवारवाली अम्मा के पुत्र प्रवीर का वह प्रेम करती है , परंतु यह प्रेम परवान चढ़े उसके पूर्व ही प्रवीर की शादी अन्यत्र हो जाती है । कली मोहभंग होकर सिलोन को चल देती है , परंतु रास्ते में ही कहीं उतर जाती है , और अंत में हम उसे केन्सर से पीडित दम तोड़ते हुए देखते हैं । प्रवीर के सामने मृत्यु का वरण कर सकें , अतः वह आसन्नस्थित मृत्यु को नींद की गोलियों से एक दिन पहले ले आती है ।

चौदह फेरे :

यह उपन्यास दो पीढ़ियों , दो समाज-व्यवस्थाओं और दो परिवेशों के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी है । साथ ही यह शिवदत्त पांडे और सर्वेश्वरदयाल पंत के मिथ्याभिमान और अहं की भी कहानी है । शिवदत्त पांडे को अपनी ऊंची जाति और शिक्षा का अभिमान है । उसका व्यक्तित्व भी बड़ा दबंग और रौबीला है । फलतः वह विदेशी उद्योगपति विल्सन की नजरों में बस जाता है । धीरे-धीरे वह "पांडे मोटर्स" , "पाण्डे जूट मिल" तथा "पाण्डे स्टील" जैसी बड़ी-बड़ी कंपनियों का मालिक हो जाता है । विल्सन की पुत्री पेट्रिसिया के प्रति वह आकर्षित भी होता है , परंतु यहां उसके कुलीनता के खयाल बीच में आते हैं । वर्णशंकर संतान से बचने के लिए वह अपनी जाति की पहाड़ की ही नन्दी नामक कन्या से विवाह करता है और उसके साथ एक रात बिताकर कलकत्ते चला जाता है । नंदी पहले ससुराल और बाद में अपने भाई के यहां उपेक्षित जिंदगी बिताती है । एक दिन वह अपनी पुत्री अहल्या को लेकर शिवदत्त पांडे के पास पहुंच जाती है है । शिवदत्त पांडे अपने विलासी स्वभाव के कारण "कुमाऊं के आगाखान " और "विधवाओं के कल्पतरु " के रूप में जाने जाते हैं ।[70] उस समय वह मल्लिका नामक एक आधुनिका के साथ रह रहे थे । अपने काम में दखल न देने की शर्त पर वह नंदी को रख तो लेता है , परंतु कुछ ही दिनों में उसके शुष्क व्यवहार से तंग आकर वह वैराग धारण कर लेती है और पहाड़ों में अपने गुरु के आश्रम में रहने चली जाती है , क्योंकि शिवदत्त ने उसकी पुत्री अहल्या को भी उससे छिन लिया था । नंदी के साथ अहल्या की आदतें न बिगड़ जाय इस डर से पांडे उसे उटि के कान्वेण्ट में डाल देता है । कान्वेण्ट से अनिंद्य सुंदरी अहल्या जब लौटती है तब वह अपनी मां को भूल चुकी होती है । मल्लिका को वह मां के स्थान पर ही मानता है । अंततः वह मल्लिका को भी छोड़ देता है जो दिल्ली में घृणित प्रकार का जीवन बिताती है । पांडे बाह्यतः आधुनिक है , परंतु भीतर से वह भारी दकियानुस है । अह अहल्या का विवाह अपनी जाति के सर्वेश्वरदयाल से करना चाहता है , जो आई. ए. एस. में चुन लिया गया है , परंतु संस्कारों का ओछापन अभी गया नहीं है । अहल्या उसके नाम से चिढ़ती

थी । अतः वह विवाह से दो दिन पूर्व भाग जाती है और अंत में उस युवक से विवाह करती है जिसे वह चाहती थी । उसका प्रेमी राजू आर्मी में था और "नेफा" बोर्डर पर लड़ रहा था । अहल्या की दूर की बहिन बसंती का पति धरणीधर एक हंसमुख और विनोदी प्रकृति का डाक्टर था । राजू उसके ही अस्पताल में आता है, जहां अहल्या भागकर आ जाती है । पांडे फिर अपने व्यवसाय में खो जाते हैं । इस उपन्यास का परिवेश भी उच्चवर्गीय समाज है । शिवदत्त पांडे कुमाऊं प्रदेश के हैं, अतः उपन्यास के कुछ प्रसंगों में ग्रामीण पहाड़ी परिवेश भी मिलता है ।

मायापुरी :

"मायापुरी" शिवानी का एक सशक्त एवं मार्मिक उपन्यास है । भौतिक-समृद्धि का व्यामोह ही वह मायापुरी है जिसमें व्यक्ति भटक जाता है और जीवन के असली उद्देश्य और रहस्य को खो बैठता है । इस उपन्यास का नायक सतीश शोभा को चाहता है । शोभा एक सीधी-सादी, सरल, सुशील एवं सुशिक्षित युवती है । परंतु सतीश की मां सतीश का विवाह तिवारी परिवार की सविता से करा देती है । तिवारीजी भारत-सरकार में राजदूत के पद पर थे और उनके सतीश के परिवार पर कई उपकार थे । अतः मां के समझाने पर सतीश मान जाता है । पर बात इतनी-सी नहीं है । सतीश व्यवहार-कुशल है और वह जानता है कि तिवारी परिवार में विवाह करने में ही उसकी भलाई है । अतः प्रेम और भौतिक-चकाचौंध में वह कमलेश्वर के उपन्यास "आगामी" अतीत " के कमल बोज की भांति भौतिकता का वरण करता है, जिसकी बहुत बड़ी कीमत उसे चुकानी पड़ती है । सविता को अपने पिता की सत्ता और संपन्नता का घमण्ड था । वह एक बड़े बाप की बिगड़ी हुई बेटी थी । उसके पिता उसकी हर बात को मान्य रखते हैं । सतीश जब विलायत से लौटता है तो उसे सविता के स्वच्छंदी-विहारों का पता चलता है । वह शोभा के आगे अपने नरक की कहानी को सुनाता है । सविता को किसी तरह शोभा और सतीश के प्रेम-संबंधों का पता चल जाता है । वह स्वयं तो अनेक युवकों से संबंध रखती है, परंतु शोभा-सतीश के "प्लेटोनिक" प्रकार के

प्रेम को भी वह बरदाश्त नहीं कर पाती , क्योंकि वह सोचती है कि सतीश को उसके पिताने उसके लिए खरीद लिया है । हमारे तथाकथित उच्चवर्गीय समाज में विवाह एक "लायसन्स" मात्र है , जिसे पिता अपनी लाड़ली पुत्रियों के लिए उपलब्ध करा लेते हैं । सविता अपने पिता से कहकर सतीश को काबुल भिजवा देती है । इसके पीछे दो कारण हैं -- एक तो सतीश शोभा को न मिले और दूसरा वह स्वच्छंदतापूर्वक अपने पुरुष-प्रेमियों में विहार कर सके । और यह व्यवस्था उसके पिता ही करते हैं । इस उच्चवर्गीय समाज के पिता अपनी पुत्रियों को कैसे-कैसे संस्कार देते हैं , तिवारीजी उसके अच्छे उदाहरण हैं । परंतु विवाह का यह "लायसन्स" सविता के पास अधिक समय नहीं रहता , क्योंकि सतीश जिस प्लेन से जा रहा था , वह "क्लेश" हो जाता है ।

श्मशानचम्पा :

"श्मशानचम्पा" उपन्यास के तीनों नारी पात्र -- डा. चम्पा , उसकी माँ भगवती तथा बहन जूही -- श्मशानचम्पा के प्रतीक रूप में आये हैं । तीनों को ही अर्थहीन , भावहीन , प्रेमहीन , निस्सार बोझिल जिन्दगी जीनी पड़ती है । कहा भी गया है --

"चम्पा तुझमें तीन गुण , रूप रंग और बास ।
अवगुण तुझमें एक है , भ्रमर न आवे पास ।। "

तीनों नारी-पात्र के सपनों का भ्रमर उनसे दूर ही रहता है । धरणीधर -- भगवती का पति -- चम्पा का पिता -- विलासी , ऐयास , भ्रष्ट , मिथ्याभिमानी तथा प्रदर्शन-प्रिय उच्च-अधिकारी था । खूब रिश्वत लेता था , पर ऐयासी में उड़ा भी देता था । दर्जनों चपरासी उसकी सेवा में रहते थे और उसकी चापलूसी करते थे । परंतु रिश्वतखोरी के कारण जब उसका निलम्बन हुआ तब सबने उसके खिलाफ गवाही दी । इस आघात से वह रुग्णावस्था में ही दम तोड़ देता है -- " कितनी कटुता , कितनी वेदना , कितना अपमान सहकर ही धरणीधर ने इस लोक से बिदा ली थी । " 71 अपनी गिरती आर्थिक स्थिति को उसने हमेशा गोपनीय रखा था , अतः

उसकी मृत्यु के उपरांत भगवती को पता चला कि न "फंड" में रूपया है और न बैंक में । अतः उसकी स्थिति भी "श्मशानचम्पा"वत् है । उसे अपने पति का सच्चा प्रेम कभी नहीं मिलता । उसे टी.बी. हो जाता है । चम्पा डाक्टर है, अतः उसका इलाज करवाती है ।

स्वयं चम्पा का जीवन भी इसी प्रकार का है । वह डाक्टर मधुकर को चाहती है, परंतु बहन जूही की गर्हित-बदनाम जिन्दगी के कारण उसके संबंध टूट जाते हैं । एक बार चम्पा जब ट्रेन से जा रही थी, तब रास्ते में उसे "टिटनस" हो जाता है । संयोग से उसी कूपे में डा. मधुकर थे । वे उसे पहचान लेते हैं और अपने घर ले जाकर जी-जान से उसकी सुश्रुषा करके उसे बचा लेते हैं, पर तभी उसकी बुआ की लड़की जया का मधुकर पर लिखा पत्र उसके हाथों में पड़ जाता है और वह वास्तविकता की जांच किए बिना वहां से चल पड़ती है और मि. सेन नामक एक उद्योगपति के अस्पताल में डाक्टर के रूप में काम करती है । मि. सेन के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे शिष्टाचार का ढोंग रचाकर स्त्रियों को अपने वासना-जाल में फंसाते हैं । अपनी पत्नी को देखने के बहाने से वह महिला डाक्टरों को रात के समय अपनी कोठी पर बुलाता है । मिनी नामक नर्स डा. चम्पा को बताती है कि डा. लीला जोसेफ एक रात कोठी पर गई थी और दूसरे दिन उसने आत्महत्या कर ली थी । परंतु मिसेज सेन -- कमलेश्वरी देवी — से डा. चम्पा की अच्छी पटने लगती है । मिसेज सेन चम्पा से पुत्रीवत् व्यवहार करती है । मिस मयूरी सेन — मि. सेन की पुत्री — तथा मि. सेन की मृत्यु एक अकस्मात में हो जाती है । मिसेज सेन [illegible] अपनी तमाम संपत्ति का एक ट्रस्ट बना देती है और डा. चम्पा के साथ रहते हुए अनाथाश्रमों तथा विधवाश्रमों की स्थापना तथा सेवा में अपना जीवन व्यतीत करती हैं ।

डा. चम्पा की बहन जूही तनवीर बेग नामक एक लड़के के साथ दिल्ली भाग जाती है । वह समलैंगिक तथा काम-विकृति से ग्रस्त एक असामान्य (एबनोर्मल) व्यक्ति है । मनोविज्ञान का कहना है कि ऐसे

पुरुष कभी अपनी पत्नी को सुखी नहीं कर सकते । पुरुष को प्रेयसी के रूप में देखनेवाला तनवीर जूही को उपहार तो देता है , परन्तु प्रेम और संतान नहीं दे पाता , अतः अंततोगत्वा उसका जीवन भी एक "श्मशानचम्पा" बन कर रह जाता है ।

कैंजा :

"कैंजा" विमाता को कहते हैं । पहाड़ों में बच्चों के लिए यह शब्द बिच्छू के डंक से कम नहीं समझा जाता है । परंतु यहां रोहित की कैंजा रोहित को इतना प्यार देती है कि कोई सगी मां तो क्या देगी । यहां ओशो रजनीश की यह बात सच्ची प्रतीत होती है कि मातृत्व के लिए मां होना जरूरी नहीं है । मां को भी भुला देनेवाली यह कैंजा है -- नंदी । नंदी प्रख्यात ज्योतिषाचार्य हेमचन्द्र तिवारी की बेटी है । अपरूप सौन्दर्य , परंतु उसकी कुंडली में साफ "वैधव्य-योग" है । अतः तिवारीजी उसका विवाह न करके शहर ले जाकर उसे खूब पढ़ा-लिखाकर डाक्टर बनाते हैं । दूसरी तरफ गांव में एक युवक है -- सुरेश भट्ट , सुदर्शन तथा पौरुषेय व्यक्तित्व का धनी । वह नंदी का दीवाना है और नंदी भी उसे मन-ही-मन चाहती थी । परंतु तिवारीजी नंदी के भविष्यफल को जानते थे , अतः उस रिश्ते को ठुकरा देते हैं । सुरेश भट्ट बहुतेरे प्रयत्न करता है । पर तिवारीजी टस से मस नहीं होते , दूसरी तरफ नंदी अपने पिता की मरजी के खिलाफ़ जाने को तैयार नहीं है । अतः वह गोरा-चिट्टा , कद्दावर पहाड़ी जवान सुरेश भट्ट "इरोटोमेनियाक" हो जाता है , यौन-क्षुधातुर पशु । लेखिका ने इस सन्दर्भ में मोपासां का एक कथन दिया है -- " नारी और जल की तृषा जब कभी घातक रूप से तीव्र हो उठती है , तो उसे बुझाने के लिए मनुष्य जघन्य से जघन्य अपराध भी करता है । " [72] सुरेश भट्ट भी सेक्स-मेनियाक, आदमखोर , लेडी-कीलर तथा एक असामान्य व्यक्ति बन जाता है । अनेक कुकर्म करता है । एक नाबालिग लड़की पर बलात्कार कर उसकी हत्या कर देता है । एक तेरह वर्ष की पागल लड़की को गर्भवती बना देता है । नंदी उन दिनों गांव आयी हुई थी । उसकी प्रसूति वही कराती है । परंतु वह मां को नहीं बचा पाती है । उसके बच्चे को वह अपने साथ

ले जाती है और उसे खूब लाड़-प्यार देती है और पढ़ाती है । परंतु रोहित जब अपने बाप के नाम को जानने की जिद करता है , तब नंदी उसे गांव ले जाती है । उस समय सुरेश रोगग्रस्त होकर मरण-शैया पर पड़ा हुआ था । उसकी अंतिम इच्छा पूरी करने के लिए नंदिनी मृत्यु से पूर्व उससे विवाह करती है । रोहित को जब अपने जन्म का इतिहास ज्ञात होता है , तब वह चिल्लाता हुआ कहता है कि नंदी उसकी "कैंजा" नहीं है ।

रतिविलाप :

प्रस्तुत उपन्यास करसनदास भोगीदास कापड़िया , उनकी पुत्रवधू अनसूया तथा एक सज़ायाफ्ता हीरा नामक स्त्री इन तीन पात्रों के आसपास तनी-कसी है । करसनदास भोगीदास कापड़िया एक सत्यनिष्ठ वचनपालक वृद्ध सज्जन है । धनाढ्य होते हुए भी वे त्यागी-तपस्वी-सा जीवन व्यतीत करते हैं । ऐसे साधनामय जीवन व्यतीत करनेवाले विवेक-संपन्न कापड़ियाजी कैसे काम [रति] की चपेट में आ जाते हैं , "रतिविलाप" उसकी ही विवृत्ति है । पत्नी की मृत्यु के उपरांत वे अत्यंत सादा और त्यागमय जीवन बिताते थे । उनका पुत्र विक्रम दिखने में "ग्रीक-देवता"-सा बलिष्ठ व सुंदर था , परंतु शैशवकाल से ही मिरगी के रोग से ग्रस्त था । पुत्र से अपार स्नेह होते हुए भी कापड़ियाजी किसीको धोखा देना नहीं चाहते थे । अतः वे अनसूया के मामा हरसुख को सबकुछ बता देते हैं । तथापि वह धन-लोलुप व्यक्ति अपनी भांजी को अंधेरे में रखकर विक्रम से उसका विवाह करा देता है । विवाह के उपरांत अनसूया को वास्तविकता का पता चल जाता है और यह भी ज्ञात होता है कि उसमें सेठजी का कोई कसूर नहीं था । अतः अपने भाग्य से समझौता करते हुए वह अपने पति तथा ससुर की सेवा में लग जाती है । परंतु उसके पति को मिरगी के दौरे में आकस्मिक मृत्यु हो जाती है । अतः सेठजी अपनी पुत्रवधू को कहते हैं कि वह अपने मामा के यहां चली जाएं , उसे वहां भी हर महीने हाथ-खर्ची के पैसे मिलते रहेंगे । लालची मामा भी उसे ले जाने को तैयार थे । परंतु अनसूया अपने निश्चय पर अड़िग रहती है । सेठजी अपनी पुत्रवधू को समझाते हुए कहते हैं -- " बेटी , मेरा वैभव , तुम्हारी कच्ची उम्र

EHTA LIBRARY

का वैधव्य , तुम्हारा सौन्दर्य कभी भी हम दोनों पर घातक हथगोला फेंक सकता है । ... समाज तो सगे भाई-बहन का एकान्तवास भी कभी अच्छी दृष्टि से नहीं देख सकता । " [73] परंतु अनसूया टस से मस नहीं होती । फलतः अपनी पैतृक संपत्ति का भवन बेचकर कापड़िया बम्बई चले जाते हैं और वहां अपनी बेटी समान पुत्रवधू को व्यापार में लगा देते हैं । एक गृहिणी के समान वे घर को तथा बहू को संभालते हैं । तभी हीरा का उनके जीवन में प्रवेश होता है । अपने पति की हत्या के जुर्म में उसे जेल हुई थी । अनसूया को उस पर दया आ जाती है । वह उसे अपने यहां ले आती है । ससुर तो पहले मना करते हैं , परंतु बाद में बहू के के आग्रह पर उन्हें झुकना पड़ता है । एक बार अनसूया को व्यापार के सिलसिले में कुछ दिनों के लिए बाहर जाना पड़ता है । लौटने पर उसे एक चिट्ठी मिलती है -- " तेरी पासबुक , शेयर आदि सबकुछ तुझे दे दिये थे , कुछ सामान हीरा के लिए लेकर जा रहा हूं । ... इस निर्दोष किशोरी का पावन प्रेम मिला , यह मेरे प्रभु का दान ही है । " [74] अनसूया उन्हें खूब तलाशती है । एक दिन उसे समाचार मिलते हैं कि बनारस के एक होटल में एक वृद्ध की खून में लथपथ लाश पायी जाती है । यही करसनदास भोगीदास कापड़िया थे । औरत लापता थी । लेखिका ने एक स्थान पर कहा है -- " विवेकशील पुरुष को भी कभी-कभी नारी अपनी नन्हीं तर्जनी पर कैसे नचाती है । " [75] प्रस्तुत उपन्यास इसका एक अच्छा उदाहरण है ।

विषकन्या :

कथ्य और शिल्प की दृष्टि से शिवानी का यह उपन्यास अनुपम बन पड़ा है । इसमें दो जुड़वां बहनों की कहानी हैं । दामिनी और कामिनी की सूरत तो एक-सी है , परंतु सीरत में आसमान-जमीन का अंतर है । सच ही " `विषकन्या` शिवानी का चरित्रगत विसदृशता {कोन्ट्रास्ट} को स्थापित करनेवाला उपन्यास है । ... दामिनी की

जुड़वाँ बहन कामिनी , दामिनी का विलोम रूप है । " 76 दामिनी माता-पिता की आँखों की पुतली है , तो कामिनी सबकी आँखों में किरकिरी । अतः अपनी पढ़ाई पूरी करके वह "एयर-होस्टेस" के×xxxxxx बन जाती है । हवाई-यात्राओं के दरमियान ही वह रोहित के प्रति आकृष्ट होती है , परंतु रोहित कोई प्रतिभाव नहीं देता । रोहित बमशिल कंपनी में उच्च-अधिकारी के पद पर काम कर रहा है । बाद में कामिनी हैरान रह जाती है , जब रोहित का विवाह अपनी ही बहन दामिनी से हो जाता है । एक बार दामिनी अपने मैके गई थी , तब अचानक कामिनी आ जाती है । रोहित उसे दामिनी ही समझता है और कामिनी रोहित की इस भ्रांति को मोह-वश टूटने नहीं देती । परंतु कुछ समय बाद दामिनी आ जाती है । xxxx× स्थिति की नज़ाकत और अपनी बहन के कमीनेपन को समझते हुए वह तुरंत मैके वापस चली जाती है । इधर रोहित को कुछ संदेह होता है । वह एकनिष्ठ प्रेमी और सच्चरित्र व्यक्ति है । वह दामिनी और कामिनी के अंतर को समझ लेता है और उसकी परीक्षा लेने हेतु उसे एक झील के पास ले जाता है । झील में नहाते समय कामिनी उसके वक्षस्थल की प्रशंसा करती है । कामिनी एक अभिशप्त नारी है , वह जिसकी भी तारीफ़ करती है xवह , वह चीज़ उससे दूर हो जाती है । यहाँ भी उसको इसकी क़ीमत चुकानी पड़ती है । कोब्रा के डंसने से रोहित की मृत्यु हो जाती है । कामिनी कभी न लौटने का प्रण लेकर अपनी नौकरी पर चली जाती है । हवाई-यात्राओं के दरमियान उसकी मुलाकात एक मि. डिसूजा से होती है । वह एक सैक्स-मैनियाक यौन-क्षुधातुर व्यक्ति है । जब भी फ्लाइट में डिसूजा होता है , वह कामिनी को छेड़ता रहता है । एक विमानी दुर्घटना में मि. डिसूजा और कामिनी साथ होते हैं , पर किन्हीं कारणों से वे दोनों बच जाते हैं । तब ऐसे भयंकर बीभत्स वातावरण में भी कामिनी के साथ वह अपनी यौन-तुष्टि करता है । उसे इस दुर्घटना से आनंद होता है — " न यह दुर्घटना होती न मुझे अपनी यह मैडोना मिलती । " अन्ततः झील का विषैला पानी पीने से उसकी मौत हो जाती है । अभिशाप यहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ता ।

भैरवी :

"भैरवी" एक मिश्रित परिवेश का उपन्यास है । एक तरफ जहां उसमें उच्चवर्गीय महानगरीय जीवन है , वहां दूसरी तरफ घोर जंगल का तांत्रिक वातावरण है । उपन्यास की समूची कथा "नयी भैरवी" चन्दन की स्मृति-यात्रा के रूप में चलती है । चन्दन का विवाह दिल्ली के एक अति-संपन्न परिवार में हुआ था । उसका पति विक्रम , मासूमा रुक्मणि के शब्दों में "बिगड़ैल-दिल-शाहजादा" था । कई लड़कियों से उसकी फ्लर्टिंग चलती थी , पर किसीसे शादी करने के लिए तैयार न होता था । परंतु पहाड़ी यात्रा के दौरान एक तूफानी रात में उसके पूरे ग्रुप के लोगों को चन्दन की मां राजेश्वरी के यहां आश्रय लेना पड़ा था , और तभी वह उसे मन-ही-मन दिल दे बैठा था । राजेश्वरी चंदन के लिए लड़का ढूंढ ही रही थी । इस आकस्मिक प्रस्ताव से उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई । पट्ट मंगनी पट्ट ब्याह वाली थियरी से वे दोनों विवाह-सूत्र में बंध गये । विवाह के उपरांत पति-पत्नी कलकत्ता जा रहे थे कि बीच में तीन-चार युवक उनके डिब्बे में चढ़ जाते हैं । ट्रेन के चलते ही वे लोग शराब की बोतलें निकाल लेते हैं । उन लोगों की दृष्टि चंदन पर पड़ती है और वे भेड़ियों की तरह उस पर टूट ~~पड़ते हैं~~ पड़ते हैं । विक्रम बीच में पड़ता है , परंतु वे लोग उसे लात-घूंसों से बेहोश कर देते हैं । पति के सामने चंदन की इज्जत लूट ली जाती है । अतः वह एक स्थान पर चलती ट्रेन से कूद पड़ती है । जब आंखें खुलती हैं तब वह स्वयं को स्वामी भैरवानंद नामक एक अघोरी तांत्रिक के अखाड़े में पाती है । माया और भैरवानंद श्मशान में रात्रि के घोर अंधकार में जलती चिताओं के सामने बैठकर तंत्र-साधना करते हैं । यहां कुछ समय के लिए चंदन का चरन नामक दासी के साथ बहनापा हो जाता है । वह चंदन को माया के बारे में सब बताती है । माया एक बाल-विधवा थी । फिर वैष्णवी हुई । उसके बाद किसी कनफटे नाथ-बाबा के चली गई । कुंभ के मेले में उसकी भेंट भैरवानंद से हुई थी और मंत्रमुग्ध-सी उनके पीछे-पीछे चली आई थी । तब से वह भैरवानंद की "भैरवी" थी , पर अब भैरवानंद को "नयी भैरवी" चंदन के रूप में मिल गई थी । वह उसके प्रति मोहासक्त होने लगता है , तब

माया ठीक ही कहती है -- " मरद का मन चाहे वह लाख साधे , औकात में होता है एकदम देशी कुत्ता । सामने हड्डी रख दो , तो कितना ही सिखाया -पढ़ाया हो , कभी लार टपकाये बिना रह सकता है ? " [77] माया को भैरवानंद का पालित नाग डँस लेता है । वह उसे जल-समाधि दिलाने जाता है । कमरा बाहर से बंद कर जाता है । चंदन समझ जाती है । भागकर दिल्ली आती है । छिपकर अपने ससुराल के बंगले पर जाती है और देखती है कि उसके पति ने दूसरा विवाह कर लिया है और आज ही उसके यहां बच्चे का जन्म हुआ है । विक्रम चंदन को मिलते ही लिपट जाता है , परंतु इधर सबकुछ बदल गया है । उपन्यास का अंत इन वाक्यों के साथ होता है -- " बेड़ियां कटने पर भी तो काल-कोठरी से छुटा कैदी मृत्यु-दंड को नहीं भुला पाता , स्वयं उसकी ही अंतरात्मा उसके पैरों में बेड़ियां डाल देती हैं । .... ठीक वैसे ही , अनजान भीड़-भरे चौराहे पर खड़ी वह मुक्त बंदिनी भी यही सोच रही थी -- वह कहां जाए ? कहां ? " [78]

<u>कालिन्दी :</u>

"कालिन्दी" एक संवेदनशील स्वमानी नारी की कथा है । ~~xxxx~~ कालिन्दी को देखकर शरदबाबू की कोई मानिनी नायिका स्मृति में कौंध जाती है । कालिन्दी के नाना रूद्रदत्त कुमाऊं के माने हुए ज्योतिषी थे । कालिन्दी की मां अन्ना का विवाह कमलावल्लभ पंत के साथ हुआ था , पर वे एक नंबर के शराबी-जुआरी थे । अन्ना को बहुत त्रास दिया जाता था । अतः नाना रूद्रदत्त उन्हें उस नरक से छुड़ा लाये थे । रूद्रदत्त के तीन लड़के थे -- नरेन्द्र , देवेन्द्र और महेन्द्र । नरेन्द्र अमेरिका में सेट हो गये थे । महेन्द्र का दिल्ली में कारोबार था । पिता के नाम को तो देवेन्द्र ही उजागर कर रहे थे । कालिन्दी की मां अन्ना उन्हीं के साथ रहती है । देवेन्द्र पुलिस-विभाग में बड़े अफसर हैं , परंतु प्रामाणिक और निष्ठावान । देवेन्द्र और शीला मामी कालिन्दी को पुत्री का प्यार देते हैं । वे कालिन्दी को डाक्टरी की शिक्षा भी दिलाते हैं । शीला की बहन मीरा कालिन्दी के लिए एक अच्छा रिश्ता भेजती है । लड़का

डाक्टर था और उसके पिता का केनेडा में अच्छा व्यवसाय था । फोटो से वह स्मार्ट और रौबिला लगता था । कालिन्दी ने अपनी सहेली माधवी की राय लेकर इस रिश्ते के लिए हां कह दी थी । विवाह तय हो गया । देवेन्द्र ने अपने सभी रिश्तेदारों को बुलाया था । महेन्द्र और उसका परिवार भी आया था । नरेन्द्र ने वाशिंग्टन से दहेज के लिए सोने के चार बिस्कुट भेज दिये थे । देवेन्द्र अपनी भांजी के विवाह में दिल खोलकर खर्च करना चाहते थे । दहेज में तीस हजार वे ह्य दे चुके थे , दूसरे पचास हजार उन्होंने तैयार रखे थे । परंतु लड़के का पिता बहुत ही लोभी किस्म का व्यक्ति था । उन्होंने सबके बीच में पचास हजार रूपयों की मांग की । देवेन्द्र घर में रखे पैसे उन्हें पहुंचायें तब तक तो बात फैल जाती है । देवेन्द्र ने अपनी भांजी कालिन्दी को यह बात नहीं बताई थी , क्योंकि अन्यथा वह शादी के लिए तैयार न होती । जब कालिन्दी को इस बात का पता चलता है , तब वह दुल्हन के श्रृंगार को हटाकर शेरनी बनकर वहां पहुंच जाती है और दुल्हे के पिता को खुब भला-बुरा कहती है । बारात लौट जाती है । देवेन्द्र की खुब बदनामी होती है । दूसरी तरफ सरकार के बदल जाने से देवेन्द्र पर तवाई आती है । अतः वह समय से पहले निवृत्ति लेकर अपने पहाड़ी गांव में चले जाते हैं । कालिन्दी दिल्ली में डाक्टरी करती है । कालिन्दी और माधवी में माधवी के पति अखिलेश को लेकर झगड़ा हो जाता है । अतः वह प्रोफेसर वर्मा के यहां किरायेदार के रूप में रहती है । परंतु वहां श्रीमती शारदा वर्मा उसको लेकर शंकित रहती है , अतः दिल्ली में दूर एकान्त स्थान पर एक फ्लेट लेकर वह रहती है । इस बीच उस लड़के ने कई पत्र लिखे थे , परंतु हर बार कालिन्दी उसे फाड़ डालती है । उसके पिता की मृत्यु हो जाने पर वह श्राद्ध के लिए आता है और देवेन्द्रमामाजी को मिलता है । वह उन तीस हजार रूपयों को लौटाने आया था । उसकी सज्जनता , विनम्रता तथा हृदय की विशालता से सब अभिभूत हो जाते हैं । कालिन्दी दिल्ली भाग जाती है । उसकी मां अन्ना उसके पीछे-पीछे उस "पाहुने" को लेकर पहुंचती है और अपनी बेटी को समझाने में सफल होती है । इस मुख्य कहानी के

साथ कालिन्दी और माधवी की कहानी , वसंतमामा और लालमामी की कहानी , एल्फी की कहानी , बिरजू की कहानी , रंजना और आबिद की कहानी , सरोज की कहानी जैसी अनेक प्रासंगिक कथाएं भी इसके साथ जुड़ गई हैं ।

गैंडा :

"गैंडा" दो सहेलियों की एक मर्मस्पर्शी कथा है । यह कथा स्त्री-सहज ईर्ष्या से शुरू होकर "सौतिया डाह" पर समाप्त होती है । सुपर्णा और राज दोनों अंतरंग सहेलियां हैं । साथ ही पढ़ी , पली और बड़ी हुई । सुपर्णा सौम्य , शांत , गंभीर और एकनिष्ठ प्रेम की पक्षधर है ; तो राज मेहरा शुरू से ही काफी शोख , चंचल और खिलंडरे स्वभाव की है । सुपर्णा का विवाह रोहित नामक एक आर्मी आफिसर से होता है और वह अपने पति तथा बच्चों के साथ खूब सुखी है । राज मेहरा का विवाह विदेश में स्थित एक संपन्न व्यापारी से होता है । वह अपने पति को "गैंडा" कहती है । परंतु शिवानीजी यहां शायद यह बताना चाहती हैं कि राज का पति वेद तो केवल शरीर से "गैंडा" है , परंतु संवेदना के धरातल पर राज ही मोटी चमड़ी की है , अर्थात् "गैंडा" है । तभी तो वह अपनी अंतरंग सखी सुपर्णा के पति पर डोरे डालकर उसके सुखी जीवन में आग लगाती है । कहा जाता है — "डाकिन भी एक घर तो छोड़ती है , पर राज तो अपनी ही सहेली के घर में घात लगाती है । हजरतगंज के मार्केट में राज सुपर्णा को एक दिन अचानक मिल गई थी । उसी दिन सुपर्णा के जीवन को प्रथम पलिता लगा था । फिर तो वह एक-न-एक बहाने से सुपर्णा के यहां आती-जाती रही । अपने वाक्चातुर्य तथा तोहफों से उसने सबका मन जीत लिया था । यहां तक कि सुपर्णा की सास भी उसे खूब पसंद करने लगी थी । राज दिल्ली के एक होटल में रिसेप्शनिस्ट की नौकरी करती थी । वेद को जब हाँगकाँग जाना पड़ा , तब भी वह उसके साथ न जाकर सुपर्णा के ही घर में रहने लगी । राज-रोहित के संबंधों की चर्चा सब जगह खुले-आम होने लगी , अतः सौतिया-डाह से प्रेरित

सुपर्णा प्रतिशोध के लिए जन्तर-मन्तर और मौलवी-दरगाह का आसरा लेती है । एक दिन वह एक मौलवी से कोई दोरा-धागा बनवा लाती है । कहा गया था कि जैसे ही राज उसे क्रोस करेगी , धागा अपना असर दिखायेगा । और ऐसा ही हुआ । वस्तुतः राज को फूड-पोइज़न हो गया था और उसीसे उसकी मृत्यु हुई । परंतु रोहित के मन में शक बैठ गया कि सुपर्णा ने ही उसे कुछ खिला दिया होगा । राज की मृत्यु के तीन दिनों बाद वेद आता है और राज की सारी चीज-वस्तुएं भेंट-स्वरूप सुपर्णा को देते हुए अश्रुसिक्त आंखों से बिदा लेता है ।

सुरंगमा :

"सुरंगमा" उपन्यास में मुख्यतः तीन चरित्र हैं -- राजलक्ष्मी , सुरंगमा और दिनकर । राजलक्ष्मी अथाह संपत्ति के स्वामी प्रबोधरंजन राय की इकलौती बेटी थी । उसकी मां को छूत की बिमारी थी । अतः राजलक्ष्मी का बचपन गवर्नेस की छाया में बीता । उसके पिता संगीत के शौकीन थे , अतः बेटी की संगीत-शिक्षा के लिए उन्होंने एक संगीत-मास्टर की व्यवस्था कर दी थी , जो ही उन्हें अंततोगत्वा ले डूबी । राजलक्ष्मी के भाग्य में उस अथाह संपति की साम्राज्ञी होना नहीं बदा था , अतः अपने संगीत-मास्टर गजानन के साथ भागकर गांधर्व-विवाह कर लिया । प्रबोधरंजन ने अपनी बेटी को कभी मुआफ नहीं किया । दूसरी तरफ गजानन ने शायद पैसों के मोह में ही राजलक्ष्मी से शादी की थी , अतः वह उस पर अमानुषी त्रास गुजारने लगा । गजानन के अमानुषी व्यवहार से आजिज़ आते हुए राजलक्ष्मी भाग खड़ी हुई । रास्ते में ट्रेन-अकस्मात में उसकी मृत्यु हो जाती , यदि रोबर्ट उसे न बचाता । कुछ दिनों वह रोबर्ट और उसकी बहन वोरानिका के पास रहती है । यहां वह एक बच्ची को जन्म देती है । बाद में रोबर्ट पर आश्रित रहने के स्थान पर वह स्वयं एक स्कूल में नौकरी कर लेती है और अपनी बच्ची सुरंगमा को भी पढ़ाती है । कुछ वर्षों बाद जब सुरंगमा बड़ी हो जाती है , तब गजानन बाप होने के अधिकार को जताता हुआ वहां आ पहुंचता है । फजीहत से बचने के लिए राजलक्ष्मी गजानन के साथ चल पड़ती

है । परंतु गजानन लक्ष्मी के इलाज के पैसों को लेकर चला जाता है , इतना ही नहीं वह सुरंगमा की सहेली मीरा के घर में भी हाथ मारता है । सुरंगमा माँ को लेकर मीरा के ननिहाल चली जाती है , वहाँ लक्ष्मी की मृत्यु हो जाती है । सुरंगमा लखनऊ आकर बैंक में प्रोबेशन आफिसर की नौकरी करती है , साथ ही मंत्री महोदय दिनकर के यहाँ उनकी लड़की को भी पढ़ाती है । दिनकरजी के कई उपकार सुरंगमा और उसकी माँ पर थे । वे एक विवेक-संपन्न व्यक्ति थे , परंतु नैनिताल के टूर में किन्हीं कमजोर क्षणों में सुरंगमा दिनकरजी को समर्पित हो जाती है । दिनकरजी की पत्नी विनिता को जब इस बात का पता चलता है , तब वह आगबबूला हो जाती हैं , परंतु सुरंगमा के व्यक्तित्व के सामनेफीकी पड़ जाती हैं । इस प्रकार लक्ष्मी को समाज के सामने जहाँ टूटते हुए बताया है , वहाँ सुरंगमा जैनेन्द्र कृत "मुक्तिबोध" की नीलिमा की भाँति समाज से जूझती और टक्कर लेती है ।

विवर्त :

इस उपन्यास में लेखिका ने एक नवीन विषय-वस्तु को उठाया है । हमारे देश में विदेशी ग्रीन-कार्ड होल्डर लड़कों के प्रति जो व्यामोह है , उसका पर्दाफाश इस उपन्यास में किया गया है । ललिता एक सुशिक्षित स्वाभिमानी और जुझारू नारी है । आर्थिक दृष्टया वह आत्मनिर्भर है । गांव के स्कूल में प्रधान-अध्यापिका के रूप में कार्यभार संभाल रही है , परंतु उसके पिता को उसके विवाह की चिन्ता खाए जा रही है । वह हमेशा अपने पिता को सांत्वना देती है कि योग्य पात्र मिलने पर वह विवाह कर लेगी । इस प्रकार सुधीर से उसका विवाह होता है जो विदेश में रहता है । बाद में बुलाने का वादा करके वह चला जाता है । कुछ समय तक तो उपहार और पत्र इत्यादि आते रहते हैं , परन्तु बाद में शनैः शनैः यह सिलसिला टूट जाता है । पिता अपनी कुछ जमीन बेचकर उसे लंडन भेजने का प्रबंध करते हैं और साथ ही उसके मामा पर एक पत्र भी लिख देते हैं । मामा के कारण लंदन में उसे कोई परेशानी नहीं होती , पर वह शीघ्र ही जान जाती है कि सुधीर ने किसी अंग्रेज

मेम से वहां है दूसरी शादी रचा ली है । उसकी पत्नी के सामने उसका परिचय चचेरी बहन के रूप में करवाया जाता है । अंततः जोन फिलोस की सहायता से वह स्वदेश लौटती है और पुनः अपने कार्य में लग जाती है ।

तीसरा बेटा :

प्रस्तुत उपन्यास में टूटते-भहराते रक्त-संबंध और दूसरी ओर विशुद्ध भावनात्मक स्तर पर बनते नये मानवीय-संबंधों के सौन्दर्य को लेखिका ने रेखांकित किया है । सत्तो ‖सावित्री‖ के दो बेटे हैं — अशोक और अनिरुद्ध । एक डाक्टर , दूसरा एंजिनियर । दोनों विदेश में बस जाते हैं । काम आता है तीसरा बेटा , जो कभी तिरुपति जाते समय ट्रेन में अनाथ के रूप में मिला था । दोनों सगे बेटों के विरोध के बावजूद सत्तो इस तीसरे बेटे को पाल-पोसकर बड़ा करती है । इसका नाम है गंगाधर । वह भी सत्तो को जी-जान से चाहता है । एक बार एक सब्जीवाला सत्तो को "बुढ़िया" कह देता है , इस बात पर वह उसे खूब पिटता है और उसकी हड्डी-पसली एक कर देता है । [79] गांववालों की भी वह खूब सेवा करता है । सबके दुःख-दर्द में शामिल होता है । इन बातों से सावित्री की छाती गज-गज फूलती है । गांव में वह सबकी आंखों का तारा हो जाता है । जब सावित्री बुरी तरह से ~~बिदx~~ बीमार हो जाती है , तब भी उसके बेटे विदेश से नहीं आते हैं । बचने की कोई उम्मीद नहीं थी , पर गंगा की मातृभक्ति रंग लाती है । सत्तो बच जाती है , परंतु मानसिक दृष्टि से वह टूट जाती है । अतः एक "विल" बनाकर सारी संपत्ति गंगा के नाम कर वह परलोक सिधार जाती है । मां की मृत्यु का तार मिलने पर वे संपत्ति की लालच में स्वदेश आते हैं , पर विल की बात सुनकर गंगा को भला-बुरा कहते हैं । इस पर गंगा सबके सामने विल को फाड़ देता है , और कहता है कि मेरे लिए यह संपत्ति नहीं , मेरी मां मूल्यवान थी । अब जब वह नहीं रही , यहां मेरी भी कोई उपयोगिता नहीं । यह कहते हुए वह गांव छोड़कर कहीं चला जाता है । इस प्रकार लेखिका ने सिद्ध किया है कि

इस भौतिक-चिंतन के युग में रक्त-संबंधों की अहमीयत खोखली होती जा रही है । सच्चा संबंध वहीं है -- जहां प्रेम होता है । सबसे ऊंची यह प्रेम की सगाई है ।

दो सखियां :

यह उपन्यास भी उपरोक्त बात को ही सिद्ध करता है । सखूबाई और आनंदी दोनों का भरा-पूरा परिवार था , फिर भी उन्हें वृद्धाश्रम में रहना पड़ रहा है । यह वृद्धाश्रम एक पहाड़ी प्रदेश में बसा हुआ है । उसमें परिवार द्वारा संतप्त और संत्रस्त वृद्ध आकर रहते हैं और अपने निजानंद में जीवन व्यतीत करते हैं । जिन्दगी-भर जिनको "मेरा-मेरा" करते हैं , जिनके लिए पेट काटते हुए एक-एक पैसा जमा करते हैं , वे ही बाद में बेगाने हो जाते हैं । जीवन की उत्तरावस्था में विरानगी छा जाती है । आनंदी की तीन संतानें हैं — राधा और रुक्मणी दो पुत्रियां और एक पुत्र रमेन्द्र । रमेन्द्र विदेश में किसी कंपनी में उच्च पद पर आसीन है , पर अब वह ससुराल का हो गया है । उसकी पत्नी मीना रमेन्द्र पर ऐसा जादू करती है कि वह अपनी मां को भूल ही जाता है । बेटियां कुछ समय तो संभालती हैं , परंतु उनके नाम पर आनंदी की संपत्ति हो जाने के बाद दामादों की दृष्टि में फरक आ जाता है । आनंदी का उत्तरदायित्व अब उन्हें बोझरूप लगने लगता है , अतः वे {बेटियां} उन्हें इस आश्रम में छोड़ जाती हैं । पिछले चार वर्षों में वे केवल दो बार मिलने आयी थीं । सखूबाई की कहानी भी इनसे भिन्न नहीं है । वह भी एक चोट खायी हुई नारी है । अतः बाहर से खूब ही शुष्क दिखती हैं , परंतु भीतर आत्मीयता का सोता अभी सूखा नहीं था । सखूबाई के साथ गुरविंदर नामक एक पंजाबी युवती रहती थी । अपने व्यवहार से उसने सबके मनों को मोह लिया था , परंतु करतारासिंह नामक प्लम्बर , जो उसके गांव का था , उसके बारे में ऐसी बातें फैलाता है कि उसका जीना हराम हो जाता है और अंततः वह आत्महत्या कर लेती है । गुरविन्दर के बाद आनंदी सखूबाई के पास रहने आती है । बेटियों से मोहभंग होकर आनंदी ~~हैंह~~ टूट जाती है और मरने से पहले सखूबाई को अपनी

मूल्यवान अंगूठी दे जाती है । एक बहुमूल्य माला भी आनंदी के पास थी । सखूबाई को लिखे पत्र में वह निर्देश देती है कि वह माला उसकी बेटियों को दी जाय , परंतु सखूबाई उसे दरिया में फेंक देती है ।

जोकर :- "जोकर" एक मां की ममता को रूपायित करने वाला उपन्यास है । तिलोत्तमा राजा सतीशवर्मन की इकलौती दुलारी राजकन्या थी । अपने ननिहाल में भी वह अकेली ही थी , अतः लाड़-दुलार के गरिष्ठ-ग्रास ने उसे जिद्दी और अड़ियल बना दिया था । परंतु उसमें एक विलक्षण प्रतिभा थी , अतः राजा साहब ने उसे टैगोर्स-स्कूल में भर्ती करवा दिया था । फलतः तिलोत्तमा एक महान गायिका बन जाती है । राजा साहब उसका ब्याह धूमधाम से करना चाहते थे , परंतु तिलोत्तमा स्वयं एक ऊंचे परिवार के लड़के से विवाह कर लेती है । तिलोत्तमा गर्भश्रीमन्त थी और उसकी ससुराल भी वैभवशाली थी , परंतु वह जिस प्रकार के वातावरण में बड़ी हुई थी , उससे बिलकुल विपरीत परिवेश था वहां का । उसकी सब जिठानियां काली थीं , अतः बच्चे भी सब काले थे । तिलोत्तमा की सास को गोरे बच्चे का बड़ा चाव था । तिलोत्तमा ऐसे बच्चे को जन्म भी देती है , परंतु उसकी किसी गलती के कारण बच्चे का यथेष्ट विकास नहीं होता और वह बहुत ही नाटा रह जाता है । घरवाले उसे एक कमरे में बन्द रखते हैं । आखिर एक दिन उसका पिता वह बच्चा सर्कस वालों को दे देता है । तबसे तिलोत्तमा का दिल अपने उस बच्चे के लिए रात-दिन तरसता है । तिलोत्तमा अपने मन की शांति के लिए संगीत के कार्यक्रमों में जाती है , और ऐसे शहरों में वह विशेष रूप से जाती है , जहां कोई सर्कस चलता हो । इस प्रकार वह अपने बेटे को खोजती फिरती है । अन्ततः एक सर्कस में एक बच्चा उसे मिलता है , जिसे वह अपना बेटा समझती है , परंतु वह उसका बेटा नहीं था । इस प्रकार यह लघु-उपन्यास मां के हृदय की तड़पन को अभिव्यक्त करता है । बच्चा कैसा भी हो , काला-कलूटा , कुरूप , नाटा पर मां की आंखों का वह सितारा होता है ।

शिवानी के अन्य उपन्यास :

उक्त उपन्यासों के अतिरिक्त शिवानीजी के "उपप्रेती" , "पाथेय", मायिक" , "तर्पण" , "कृष्णवेणी" तथा "कस्तूरी मृग" इत्यादि उपन्यास उपलब्ध होते हैं । यहां बहुत ही संक्षेप में उन्हीं पर विचार किया जा रहा है ।

"उपप्रेती" की रमा लेखिका की सहेली है । उसका श्यामवर्ण उसका दुश्मन बन जाता है । शैशव कैंजा की घुड़कियों में और वैवाहिक-जीवन पति की उपेक्षा और श्वसुर-पक्ष की सेवा में बीता । उसकी सेवा , निष्ठा और गांभीर्य के कारण उसका पति उपप्रेती उसे अपने साथ ले जाने के लिए राजी हुआ । परंतु यहां भी नसीब ने साथ नहीं दिया । देवर की शादी में बस खाई में गिर जाती है । कोई बचता नहीं । रमा संन्यास ग्रहण कर लेती है । बरसों बाद उपप्रेती साइबीरिया के सीमांत पर स्थित एक शहर में लेखिका को मिलता है । नववधू नंदी और उपप्रेती पति-पत्नी की तरह रहते थे । नंदी उसे ही अपना पति मान बैठती है और उपप्रेती उस भ्रांति को बनाए रखने में ही औचित्य देखता है । इस प्रकार रमा पति के रहते हुए भी वैधव्य का जीवन बिताती है और नंदी विधवा होकर भी सौभाग्यवती का । उपप्रेती लेखिका से वचन भरवा लेता है कि वह रमा से इसका कोई जिक्र नहीं करेगी । अतः रमा की मृत्यु के उपरांत एक लघु-उपन्यास के रूप में लेखिका इस कथा को अभिव्यक्ति देती हैं ।

"पाथेय" की नायिका तिलोत्तमा भी एक दुःखी एकाकी नारी है । पैसों की लालच में उसका मामा उसका विवाह प्रतुल से करवा देते हैं जो एक असाध्य बीमारी से ग्रस्त है । तिलोत्तमा उसकी बहुत सेवा करती है । उसे सैनेटोरियम में ले जाती है । पर फिर भी वह बचता नहीं है । उसकी मृत्यु के उपरांत वह लंडन जाकर खूब पढ़ती है और वहां से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करके भारत में आकर ओरिएन्टल स्टडीज़ स्कूल में लेक्चरर के पद पर काम करती है । कई वर्षों के बाद शिवशंकर नामक अवकाश-प्राप्त चीफ एंजिनियर तिलोत्तमा को कहते हैं कि मेरा पुत्र

विनायक अक्षक× अपने पूर्व-जन्म में आपका पति प्रतुल था । उसे ल्युकेमिया हो गया था और वह भी जीवन-मरण के बीच झूल रहा था । तिलोत्तमा उसे भी अपने प्रेम का पाथेय देकर विदा करती है । उसके बाद वह अपने ससुर की खूब सेवा करती है । उनकी मृत्यु के उपरांत वह उनकी अतुल संपत्ति की स्वामिनी होकर एकाकी जीवन व्यतीत करती है । इस प्रकार यहां भी प्रेमचन्द के "काया-कल्प" की भांति जन्म-जन्मांतर का किस्सा रखा गया है ।

"माणिक" की कहानी कोई जासूसी फिल्मी कहानी जैसी है । नलिनी मिश्रा और रमा दो बहनें हैं । माता-पिता की मृत्यु के बाद नलिनी ही रमा की परवरिश करती है । परंतु वह बहुत ही अनुशासन -प्रिय है, अतः रमा उससे कतराती है । कालेज की शिक्षा पूरी होने पर रमा ने संगीत सीखने की जिद की, अतः उसके लिए एक संगीत-शिक्षक की व्यवस्था की गई । रमा उसके साथ भागकर विवाह करने वाली थी, परंतु नलिनी उसे स्टेशन से पकड़ लाती है और रमेन्द्र नामक एक युवक से उसकी शादी करा देती है । रमा और रमेन्द्र की दृष्टि नलिनी की संपत्ति पर, विशेष-रूप से उस मूल्यवान माणिक पर थी, जिसे वह कभी अपने से अलग नहीं करती थी । एक बार रमा जब बीच में आती है तो उसकी आँखें आश्चर्य से फटी रह जाती है, क्योंकि जो दीदी अनुशासन, आत्म-संयम, विवेक आदि की बातें करती थी, वही अब अपनी उत्तरावस्था में मिस दीना बाटलीवाला से समलैंगिक-संबंधों में आकंठ डूबी रहती है । वह पूर्णतया "लिस्बियन" औरत हो चुकी है ।[80] रमा अपनी उपेक्षा से रूठकर चली जाती है । नलिनी की नौकरानी लक्ष्मी रामताऊ के द्वारा पत्र लिखवाती है कि वह फौरन "वाटिका" आ जाय । रमा पहले तो नहीं जाती, पर बाद में रमेन्द्र के समझाने पर दो-तीन दिन बाद जाती है । नलिनी की हत्या हो चुकी थी और मिस बाटलीवाला बहुमूल्य अलंकारों, कैश तथा उस महामूल्यवान अद्वितीय बेनजीर माणिक के साथ फरार थी । बाद में ज्ञात होता है कि मिस बाटलीवाला एक फरार मुजरीम थी, जिसकी पुलिस को पिछले सात वर्षों से तलाश थी ।

"तर्पण" एक शांत , सुशील , सुशिक्षित , गंभीर नारी के प्रतिशोध की कहानी है । इसमें लेखिका ने प्रतिपादित किया है नारी जब तक शांत रहती है निरीह गाय के समान होती है , परंतु उसके धैर्य के बांध के टूटने पर वह चंडिका-रूप भी धारण कर सकती है । पुष्पा पंत एक ऐसी ही नारी है । किशोरावस्था में एक नर-पशु ने उसके कौमार्य को भंग किया था । बदनामी के कारण उसकी माता का देहांत हो गया और पिता ने आत्महत्या कर ली । पुष्पा ने ही अपने भाई को पढ़ा-लिखाकर विदेश भेजा तथा उसकी गृहस्थी को जमाया । भाई किशन विदेश में खुश था । इधर पुष्पा पंत एक स्कूल में अध्यापिका हो जाती है और अपनी पहाड़ी नौकरानी खिमुली के साथ शेष जीवन व्यतीत करती है । तभी पीतांबर पांडे उसके जीवन में आता है । वह उसकी ही स्कूल में एक अध्यापक था । दोनों का विवाह हो जाता , परंतु तभी वह नर-पशु जिलाधीश होकर पुष्पा की स्कूल के एक समारोह में आता है । पुष्पा मौका देखकर उसकी हत्या कर देती है और इस प्रकार अपने माता-पिता की मृत्यु का "तर्पण" करती है । जेल जाने से पूर्व वह पीतांबर को सब समझा देती है ।

शिवानी के कथा-क्षेत्र में जन्म-जन्मांतर , तंत्र-मंत्र , जादू-टोना, भूत-प्रेत आदि "सुपर-नेचरल" वस्तु का संन्निवेश मिलता है । यहां शिवानी अन्य लेखकों से अलग पड़ती है । इसमें लेखिका एक दिन समुद्रतट पर "कृष्ण-वेणी" नामक एक अनिंद्य सुंदरी का प्रेत देखती है और दंग रह जाती है । कृष्णवेणी आई.सी.एस. अधिकारी देवकीनाथन की इकलौती पुत्री थी । उसमें एक अद्भुत दिव्य शक्ति थी । जब वह आँखें बन्द करके कुछ भविष्य-कथन करती तो उसकी बात सत्य निकलती । उसकी इस शक्ति से लाभ उठाते हुए उसके पिता नौकरी से त्यागपत्र देकर रेस में लाखों-करोड़ों कमा लेते हैं । वेणी उस व्यक्ति से विवाह नहीं करती , जिसके साथ उसके पिता करना चाहते थे । अतः वह शांति-निकेतन चली जाती है । वहां उसकी भेंट लेखिका तथा भास्करन से होती है । भास्करन एक अच्छा चित्रकार था । वह वेणी का एक पोर्ट्रेट बनाता है । वेणी भास्करन से विवाह करना चाहती थी , परंतु वह मना कर देता है , क्योंकि उसके

परिवार में छूत की बीमारी चली आ रही थी । वेणी विदेश चली जाती है , जहां एक कार-अकस्मात में उसकी मृत्यु हो जाती है । यह घटना सन् 1941 की है , परंतु सन् 1980 में लेखिका समुद्रतट पर वेणी को उसके उसी स्वरूप में देखती है ।

"कस्तूरी-मृग" का नायक नन्हा भी एक प्रेम-वंचित अभागा युवक है । कस्तूरी मृग की भांति प्रेम के लिए वह इधर-उधर मारा-भागा फिरता है , पर वह प्रेम उसे कहीं नहीं मिलता । उसका पिता बेहद ऐयास और विलासी था । रातदिन राजेश्वरी नामक एक गणिका के कोठे पर पड़ा रहता है । उसके गम में मां भी मर जाती है । जिस दिन मां मरती है उस दिन उसका बाप राजेश्वरी के साथ दशहरे की तैयारियों में लगा था । बस एक घोषबाबू थे , जो उस परिवार का थोड़ा ध्यान रखते थे । घोष बाबू के कारण ही नन्हा पढ़-लिखकर आफिसर हो जाता है । कई वर्ष बाद जब अपने घर जाता है तब अपने पिता को कोढ़ी रूप में पाकर उसे ग्लानि होती है । तथापि वह उन्हें कुष्ठाश्रम में दाखिल करवाता है और उनकी सुश्रूषा करता है । पिता की मृत्यु के उपरांत वह अपनी बचपन की साथी और प्रेमिका कनक को ढूंढ निकालता है और उनके माता-पिता के आगे विवाह का प्रस्ताव रखता है , परंतु उसके पिता के कारनामों के कारण वे इस प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं । नन्हा प्रतिशोध लेने राजेश्वरी के कोठे पर पहुंचता है तो उसे अंधी और अपाहिज पाता है । इस प्रकार उसके जीवन की एक भी इच्छा पूरी नहीं होती ।

1.08 : शिवानी के जीवन का संक्षिप्त परिचय :

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का विषय "शिवानी के उपन्यासों की भाषा " से सम्बद्ध है और किसी भी लेखक की भाषा पर उसके जीवन के विभिन्न पक्षों , उसके अनुभवों , शिक्षा , व्यवसाय , भ्रमण , माता-पिता , उनके व्यवसाय , उनके संस्कार , लेखक के स्वयं के अर्जित संस्कार इत्यादि अनेक बातों का प्रभाव परिलक्षित होता है । अन्यथा शैलेश मटियानी ठेठ कुमाऊं प्रदेश के हैं , परंतु उनकी भाषा

में जो गुजराती-मराठी शब्द आये हैं , उसका कारण है उनका कई वर्षों तक का बम्बई निवास । अभिप्राय यह कि लेखक का जीवन उसके लेखन को , लेखन की भाषा को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित करता ही है । अतः यहां शिवानी के जीवन पर एक दृष्टिक्षेप कर लेना यथेष्ट ही समझा जायेगा ।

शिवानीजी का मूल नाम तो गौरा पंत हैं और वह मूलतः कुमाऊं प्रदेश की निवासिनी हैं । परंतु उनका जन्म सन् 1923 में गुजरात के राजकोट शहर में हुआ था , क्योंकि उनके पिता राजकोट के राजकुमार कालेज में अध्यापक थे । इस संबंध में स्वयं शिवानीजी लिखती हैं — " मेरे पिताजी अपनी विदेश की शिक्षा , रौबीले व्यक्तित्व और कठोर अनुशासन के कारण प्रिन्सवर्ग में बहुत जन-प्रिय थे । एक-से-एक बड़ी रियासतों के राजपुत्र आग्रह कर , उनके 'हाउस ' में पढ़ने आते । उन दिनों कुछ राजकुमारों को पब्लिक स्कूल की भांति एक हाउस-मास्टर के अनुशासन में रहना होता था । माणावदर , रामपुर , जूनागढ़ , मैसूर , असदन , ओरछा , दतिया आदि के अनेक राजकुमार उनके छात्र थे । दतिया के राजकुमार , जिन्हें पिताजी प्यार से बुलबुल पुकारते थे , एक लम्बे अर्से तक हमारे गृह-सदस्य के रूप में मेरी मां के साथ रहे । एक-एक कर पिताजी के राजसी छात्र , राजा बने और सबने गुरु को स्मरण किया । "[81]

राजकोट में गुजराती परिवारों के साथ , विशेषतः वहां के नागर परिवार , शिवानीजी के परिवार का काफी "घरोबा" -सा हो गया था । घर में गुजराती बोली जाती थी , यहां तक कि पहाड़ से आये नौकर भी धीरे-धीरे गुजराती बोलने लगे थे । " सामने ही नागर ब्राह्मणों की ऊंची हवेली की खिड़की हमारी खिड़की से सटी-सटी थी । वहीं से गुजराती गांठिया और "गोळकेरीनुं अथाणुं " (आम की मीठी अचारी) के साथ पहाड़ी अखरोटों का ' बार्टर-प्रणाली ' से आदान-प्रदान चलता रहता । रसिकभाई , कोकिल भाई , उर्मिलाबेन और इच्छाबेन के गोल-लम्बे चेहरे अभी भी स्मृतिपटल पर धुंधले पेन्सिलस्केच-से उभर आते हैं । "[82]

शिवानीजी का पूरा परिवार सुशिक्षित था । सबको पढ़ने का बहुत शौक था , यहां तक कि उनके महाराज बूढ़े लोहनीजी को भी कुछ पढ़े बिना नींद नहीं आती थी । दीवानखाने में चारों ओर किताबों के अंबार रहते । शिवानीजी की मां गुजराती साहित्य की विदुषी थी और उनके भंडार में गुजराती साहित्य की एक-से-एक बढ़िया किताबें होती थीं । मुंशी और मेघाणी उनके प्रिय लेखक थे । पिताजी तो बहु-शिक्षित और बहुपठित थे ही । उनके दादा हरिराम पांडे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ाते थे और संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान थे । जब स्वामी विवेकानंद बनारस गए थे , तब उनका संस्कृत में लिखा हुआ मानपत्र उन्हें अर्पित किया गया था । तंत्र-साधना में भी वे पारंगत थे । महामना पंडित मदनमोहन मालविया के वे अभिन्न एवं आत्मीय थे । नीलकंठ बाबा तथा संत नित्यानंद जैसे सिद्ध पुरुषों से भी उनके निकट के संबंध थे । मां आनंद-मयी की भी उन पर कृपा थी । इस प्रकार बनारस तथा अल्मोड़ा में दादाजी के साथ शिवानीजी का जो शैशव बीता उसके कारण उनकी ऊर्जा को श्रेष्ठतम संस्कार मिले ।[83]

शिवानीजी के पिता पहले राजकोट कालेज में राजकुमारों के अध्यापक रहे । उनके पास विदेश की ऊंची शिक्षा और रौबीला व्यक्तित्व तो था ही , अतः अपने पूर्व-स्रोतों के कारण उनको एक से एक ऊंचे पद मिलते गये । राजकोट , माणावदर , रामपुर , बैंगलोर , सिलोन आदि स्थानों पर वे रहे । अतः राजघरानों तथा अंग्रेज पोलिटिकल [illegible] एजेण्टों से भी उनकी काफी घनिष्ठता रही । डा. वहीदी , डा. कुरैशी , सर गिरजाशंकर वाजपेयी , सर सुल्तान अहमद आदि उनके विशेष मित्रों में थे । प्रख्यात पहलवान राममूर्तिजी भी उनका आतिथ्य मान चुके हैं ।[84] उनके यहां अतिथियों का मेला नित्य ही लगा रहता था । स्वयं शिवानी जी इस विषय में कहती हैं — " पिताजी अपने आतिथ्य और ऊंची पसंद के 'सेलर ' के लिए प्रसिद्ध थे । अस्सी वर्ष पुरानी कौनेक ब्रेण्डी , रेज़ि-डेण्ट की पत्नी के लिए हरी क्रीम डी. मिंथ , पोलिटिकल एजेण्ट के लिए विशेष रूप से बनायी गयी काकटेल , बर्फ के ऊंचे अम्बार में खनकती बियर

बड़े कायदे से निकाली जातीं । कभी भी सस्ती ही-ही ठी-ठी या अल-जलूल बातों को सुनने का अवसर नहीं आता । " 85

शिवानीजी की शिक्षा राजकोट , वेरावल , रामपुर , नैनिताल, अल्मोड़ा तथा शांतिनिकेतन आदि स्थानों पर हुई । " जो नौ साल शांति-निकेतन में कटे , वह मेरी जिन्दगी का सबसे अच्छा समय था । शांति-निकेतन का वह स्वर्णयुग था । वहां जो पढ़ने-लिखने के शौकीन थे , उनका एक "टैगोर स्टडी सर्कल " था । हम सब उसमें जाते थे । " 86 शिवानीजी ने बताया है कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर , प्रसिद्ध आचार्यगण , साहित्यकार और कलाकारों के सानिध्य में गुजरे ये दिन उनके अपने लेखन के लिए जैसे ईश्वर ने सौगात में भेज दिए थे । शांतिनिकेतन में गुरुदेव उन्हें "गोरा" नाम से पुकारते थे , क्योंकि बंगला में "गौरा" के स्थान पर "गोरा" ही चलता है । शिवानी के साहित्य में बंगला भाषा और साहित्य का जो विशेष प्रभाव दिखता है , उसका यही कारण है । बंगला समाज तथा संस्कृति की भी खासी झलक उनके लेखन में प्रतिबिंबित हुई है । असल में उनकी पढ़ाई बंगला माध्यम से हुई । नौ वर्ष शांतिनिकेतन में रहीं । बंगला साहित्य को खूब पढ़ा । बंकिम से वे विशेष रूप से उद्वेलित हुई थीं । उनकी "आमादेर शांतिनिकेतन" और "स्मृति-कलश " में इस पृष्ठभूमि के काफ़ी चिन्ह दृष्टिगोचर हxxxx हुए हैं ।

एक तरफ जहां शिवानीजी की अंग्रेजी की शिक्षा मि. एवं मिसेज स्मिथ जैसे अंग्रेज अध्यापकों के हाथों हुई , वहां दूसरी तरफ अल्मोड़ा-निवास के दौरान पितामह के संरक्षण में उनकी संस्कृत शिक्षा पंडित गंगादत्तजी द्वारा हुई । इसका वर्णन करते हुए शिवानीजी लिखती हैं — " इधर हमारे सनातनी पितामह ने अपने अनुशासन की पकड़ और कड़ी कर दी थी । हमारी शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन कर दिया गया था । सुबह उठते ही संस्कृत के पंडित गंगादत्तजी आ जाते । नित्य उन्हें अमरकोश के पांच श्लोक कण्ठस्थ कर सुनाने होते । फिर तीनों भाई-

बहनों को लाइन में खड़ा कर त्रिफला से आँखें धुलवायी जातीं । चालीस वर्ष के अनुशासन की लगाम में गृह के अनेक सदस्यों को कसते-कसते , लोहनी -जी दक्ष हो गये थे । जरा भी चींचपड़ की , तो हाथ-पैर बांधकर लकड़ी की कोठरी में डाल देते और हफ्ता-भर मूली , लौकी , कद्दू-जैसी अरसिक सब्जियां खिला-खिलाकर नाक में दम कर लेते । "[87] सात-आठ साल की शिक्षा गुरुदेव की निगहबानी में शांतिनिकेतन में भी हुई । शिवानीजी इस समयांतराल को अपने जीवन का "सुवर्णकाल" कहती है ।

कुमाऊं प्रदेश भारत का एक अत्यन्त ही सुंदर प्रदेश है । प्रकृति के अमर चितेरे सुमित्रानंदन पंत इसी कुमाऊं की धरती से हैं । शिवानी के उपन्यासों में भी कुमाऊं प्रदेश की सुंदरता , न केवल प्राकृतिक प्रत्युत जन-जीवन-गत सुंदरता , ×××××× जो प्रतिबिंबित मिलती है , उसके पीछे भी यही कारण है शिवानीजी ने इस धरती मां के सौन्दर्य का धावण खूब पिया है । छककर पिया है । शिवानीजी ने इस संदर्भ में लिखा है -- "सुबह इनके साथ (लोहनीजी के साथ) घूमने जाना अनिवार्य था । सद्यः स्नाता कुमाऊं की अनुपम वनस्थली का वह रूप आज भी मेरी कलम की स्याही जुटाता रहता है । लम्बे चीड़ , देवदार और अयार के वृक्षों से लटकते ओस की बूंदों के मोती-जड़े लटकन टप-टप बिखर कर हमें भिगो देते । लौटते तो गिरजे की घण्टियां बज रही होतीं । पता नहीं क्यों गिरजे की घण्टियों की जो मिठास , अल्मोड़ा के गिरजे में है , वह मुझे अन्य कहीं नहीं मिलती । लगता है अल्मोड़ा का सरल , स्निग्ध सौन्दर्य , घण्टे की मिठास में घुल-मिल गया है । .... हमारे घर की परिक्रमा करने पर पूरा अल्मोड़ा ही देखा जा सकता था । इधर देवीधुरा, गढ़वाल की धुधली चोटियां , उधर द्रुणागिरि , गागर , मुक्तेश्वर , जलना ×× और बानड़ी । जाली से घिरी घर की बड़ी खिड़की को हमारी दादी रामझरोखा कहा करती थीं । आधा घण्टा खिड़की पर बैठो , तो टेलि-विज़न चालू हो जाता , पैरों में बेड़ियां डाले लड़खड़ाते कदमों से राम-बांस काटने जाते खूनी कैदी , जो पहाड़ की उर्वशियों को देखते ही अपनी वासना की भट्ठी में अश्लील गालियों का कोयला झोंकने लगते । घोड़े पर

झूमता आईना देखता पहाड़ का राजपूत बांका नौशा , डांडी पर बैठी लम्बा घूंघट उठाकर , सुघड़ नासिका से नथ का लटकन संभालती इधर-उधर भयत्रस्त विस्फारित दृष्टि से देखती ' दुर्गुण ' [गौने] की सुघड़ नवेली दुल्हन , पागल हाथी-से चीखते-चिंघाड़ते नंग-धड़ंग उन्मादग्रस्त अभागे , जो अल्मोड़े के दुर्भाग्य से हर गली के हर मोड़ पर मिलते रहते हैं । छोटी-सी सड़क को अपने विराट कलेवर से दबाती , पीठ पर लिखे अपने विचित्र आश्वासन ' फिर मिलेंगे ' को चमकाती , किसी सरदारजी की सीमेण्ट-भरी ठेला ट्रक । गैस के लैम्प के ऊपर-नीचे होते प्रकाश के बीच महाप्रस्थान के पथ पर जाती अर्थी का जुलूस , सब हमारे रामझरोखे से दिखता रहता था और शायद अब भी दिखता होगा । तीन-चार वर्ष तक रामझरोखे में बैठने का सौभाग्य रहा , फिर हमें शांतिनिकेतन भेज दिया गया । " 88

शिवानीजी के पिता राजकोट में राजकुमारों को पढ़ाते थे । अतः राजघरानों के तौर-तरीकों से वह भलीभांति वाकिफ़ रही हैं । अपने उन दिनों के संस्मरणों की जुगाली करते हुए वे कहती हैं -- " बीच-बीच में बड़ी-सी मोटर में बैठकर हम पिताजी के छात्र , जसदन के बापा साहब के महल में जाते तो माधवी रानी बड़े प्रेम से अपनी पुत्री लीला बा के साथ खेलने के लिए मुझे रोक लेतीं । रात-भर उनके विराट महल की जहाज-सी पलंग में उठ-उठकर बैठ जाती और घर , मां के पास जाने के लिए रोती रहती । सुबह उठते ही महल के लम्बे-तड़ंग भूत-से अरबी नौकरों को देखकर सहम कर रह जाती , थोड़ी देर में ' खम्मा-खम्मा ' करती दासियों की रंगीन फौज हमें बाग में घुमाने ले जातीं , हिंडके में पेंग दे-देकर झुलातीं और मैं घर के लिए रोना भूल जाती । " 89

शिवानीजी के पिता जब रामपुर की रियासत में थे तब सिकंदर मियां उन्हें घुड़सवारी सिखाने आते थे । वहां के रेवेन्यू मिनिस्टर बृजचन्द्र शर्मा के पुत्र कृष्णचन्द्र भी उनके साथ ही घुड़सवारी सीख रहे थे । उन दिनों को याद करते हुए शिवानीजी

लिखती हैं -- " इन्शाअल्ला , बिट्टो , तुम अब घुड़सवारी में किसुन-भैया को भी पछाड़ सकती हो" , वे कहते और मैं गर्व से फूल उठती । किसुनभैया के पिता श्री बृजचन्द्र शर्मा मेरे पिता के अभिन्न मित्र थे और वहीं रेवेन्यू मिनिस्टर थे । एक दिन कुआं फांदने की हर्डल में मैंने सचमुच ही "किसुनभैया" को हरा दिया , तो सिकंदर मियां ने मेरा माथा चूम लिया । तब मैं सचमुच ही उनसे बाजी मार ले गयी थी , पर जिन्दगी की घुड़दौड़ में वे घोड़ा भगाते अब मुझसे बहुत आगे निकल गये हैं । कुछ वर्ष पूर्व पेकिंग में एक उच्च पदस्थ फौजी अफसर थे । अपने फौजी बिल्लों के बीच अब तक शायद कई सोने के तमगे लटका चुके होंगे , पर भाग्य की विडम्बना देखिए कि वर्षों पहले उन्हें घुड़सवारी में पछाड़ने पर भी आज तक मैं एक तमगा भी नहीं जुटा पायी । " [90] परंतु शिवानी जी भले घुड़दौड़ के तमगे न जुटा पायी हों , ये जो उनकी इतनी सारी कथा-कृतियां हैं , वे किसी तमगे से कम है क्या ?

शिवानीजी के पति भी विद्वान थे । उनके प्रोत्साहन ने लेखन को और भी तीव्र बनाया । वे पहले लेक्चरर थे , फिर शिक्षा मंत्रालय में चले गये , जहां संयुक्त सचिव का पदभार संभाला । उनके बच्चों पर भी सरस्वतीजी की कृपा रही । उनकी बेटी मृणाल पांडे हिन्दी की सुप्रसिद्ध कथाकार और पत्रकार हैं । "वामा" तथा "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" में संपादिका रहने के बाद सम्प्रति वे "दैनिक हिन्दुस्तान" की संयुक्त संपादक हैं । "स्त्री: देह की राजनीति से देश की राजनीति तक " तथा "परिधि पर स्त्री " जैसे चर्चास्पद एवं विवादित नारीवादी ग्रंथ की वे लेखिका हैं ।

शिवानी की कृतियों में पाठकोंने उनके उपन्यास "कृष्णकली" , "चौदह फेरे" , "कालिन्दी" प्रभृति को खूब पसंद किया है , लेकिन उन्हें स्वयं अपना एक यात्रा-वृतान्त "चरैवेति " बहुत पसंद है । आज भी अपनी किसी रचना के छपने पर उन्हें आनंद आता है । लिखने को वह अपने लिए नशा मानती हैं । प्रतिदिन लिखती हैं । चाहे "चंद सतरें "

ही क्यों न हों । [91]

अभिप्राय यह कि शिवानीजी ने एक भरपूर रंगारंग जीवन जिया है । उनके पास समृद्ध जीवनानुभवों की अनमोल पूंजी है । परंतु यह पूंजी उनकी शक्ति और सीमा दोनों हैं । इन अनुभवों के कारण जहां उन्होंने हमारे उच्चवर्गीय जीवन तथा कुमाऊं प्रदेश के जन-जीवन को रूपायित किया है और हिन्दी कथा-साहित्य की एक छूटती कड़ी को जोड़ा है , वहां उसकी पुनरावृत्ति ने कई बार एकरसता की सृष्टि की है । "उनके लेखन की भाषा की क्लिष्टता के बारे में प्रायः प्रश्न उठते हैं , लेकिन उन प्रश्नों ने कभी उन्हें घायल नहीं किया । वह कहती हैं कि वे शब्दकोश खोलकर नहीं लिखतीं । जो भाषा बोलती हैं , वही लिखती हैं । वास्तव में बात भी ठीक है । अगर उनकी भाषा दुर्बोध होती , तो क्या आज वह लोकप्रियता के शिखर पर होतीं ? क्या उनके रचना-संसार पर इतने शोध-कार्य चल रहे होते ? उन्हीं के अनुसार न तो लोकप्रिय होना इतना आसान है और न ही उसे स्थिर बनाए रखना , फिर भी कुछ बात है कि मिटती नहीं , इसलिए आधी सदी से भी अधिक हो गया कि कलम न थकती है , न रूकती है । वह कभी भी लिख लेती हैं । ज्यादातर रात को या फिर एकान्त में लिखना अच्छा लगता है । कभी-कभी तो रात-दिन भी लिखा है । "कालिन्दी" ऐसा ही उपन्यास है । " [92]

घर-गृहस्थी के साथ-साथ लेखन-कार्य को साधना कितना कठिन है , यह शिवानीजी से ज्यादा बेहतर कौन जान सकता है । इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है -- " एक ही हाथ से चिमटा और लेखनी पकड़ना बहुत सुगम नहीं है । प्रायः ही कहानी लिखने बैठती हूं तो समय पता नहीं पंख लगाकर उड़ जाता है । युनिवर्सिटी , स्कूल से बच्चे लौटते हैं तो अचकचाकर नाश्ता जुटाती हूं । रात को खाने की मेज पर एसेम्बली के-से प्रश्न पूछे जाते हैं । लड़कियों के व्यंग्य-बाण छूने लगते हैं : 'लगता है दीदी ने आज कहानी लिखी है , इसीसे सब्जी जलकर राख हो गयी है ।' अभियुक्त के पास इसके विरोध में कोई दलील नहीं है । यह सचमुच

मेरी दुर्बलता है , कहानी लिखती हूं तो सब्जी जला देती हूं । और सब्जी बनाती हूं तो कहानी । "[93]

1.08 : अन्य शैलीकारों से तुलना :

शास्त्र और साहित्य में एक मुख्य अंतर यह भी है कि शास्त्र में केवल अर्थ का महत्व होता है , शब्द का नहीं । जबकि साहित्य में शब्द और अर्थ दोनों का महत्व होता है — "शब्दार्थौ सहितौ काव्यं " । साहित्य यह दोनों अविभाजित रहते हैं । तुलसीदासजी ने भी लिखा है — "गिरा अर्थ जलवीचिसम कहियत भिन्न न भिन्न । " अर्थात् वाणी माने शब्द और अर्थ जल और उसकी लहरियों के समान हैं । लहरियों को जल से अलग नहीं कर सकते । दूसरे शब्दों में कहें तो शास्त्र में केवल बात का महत्व है , बात की प्रस्तुति का नहीं ; जबकि साहित्य या कला में बात को कैसे कही जाय उसका भी बड़ा महत्व है । और बात कहने के कई ढंग होते हैं । बात कहने के ये नाना ढंग कला और साहित्य में सीमातीत संभावनाओं के द्वार खोल देते हैं । यही कारण है कि कभी भी साहित्य या कला में पूरे अंक नहीं दिये जा सकते , क्योंकि जो कहा गया है वही अंतिम नहीं है । तभी तो उस शायर ने कहा था —

" कोई हद ही नहीं यारब , मुहब्बत के फसाने की ;
सुनाता जा रहा है जो जिसको जितना याद आता है । "[94]

कोई सैनिक अपने परिवार से अलग , शामके समय अपने कैम्प में अकेला बैठा है । इस प्रसंग को कई तरह से अभिव्यक्त किया जा सकता है । जैसे — /1/ साली ! यह भी कोई जिन्दगी है ? परिवार हजारों मील दूर है और यहां अकेले ठूंठ की तरह पड़े हैं । /2/ उसकी नज़र पार्क के एक जोड़े पर पड़ती है । वह प्रेमालाप में लीन हैं है । पास में दो फूल-से बच्चे खेल रहे हैं । सैनिक की आंख से दो अश्रुबिन्दु टपक पड़ते हैं । /3/ शाम ढल रही है , सूरज अस्ताचल की ओर जा रहा है । पंछी अपने-अपने घोंसले की ओर प्रयाण कर रहे हैं , गायों का धन लौट रहा है ।

वह सोचता है कि आखिर शाम होने पर पशु-पक्षी भी अपने बसेरे पर जाते हैं। अभी तो और भी कई ढंग हो सकते हैं, इसी एक बात को कहने के लिए। सूखे वृक्ष को "शुष्क वृक्षः" भी कहा जा सकता है और"नीरस तरुरिह" भी कहा जा सकता है।[95] और भाषा में शैली का प्रारंभ यहीं से होता है। उपन्यास के पाठक कई तरह के होते हैं। कुछको केवल कथावस्तु से मतलब होता है, तो कुछ उसमें काव्यानंद प्राप्त करना चाहते हैं। शिवानी के उपन्यासों में दोनों प्रकार के पाठकों को संतुष्टि मिल सकती है। यहाँ पर हिन्दी के कुछेक औपन्यासिक शैलीकारों से उनकी तुलना करने का उपक्रम है।

शिवानी की भाषाशैली पर विचार करते हैं तो पाठकों और अनुसंधित्सुओं का ध्यान शैलेश मटियानी की ओर गये बिना नहीं रह सकता। शैलेश मटियानी के बम्बई के जीवन पर आधृत प्रारंभ के कुछेक उपन्यासों को छोड़कर उनके अन्य उपन्यासों की भाषाशैली में हमें कुमाऊं प्रदेश की मिट्टी की गंध और काव्यात्मक भाषाशैली के तथा नूतन अभिव्यंजना के दर्शन होते हैं। उनके उपन्यास "बर्फ गिर चुकने के बाद" में मन की संश्लिष्ट एवं जटिल मनोस्थिति का आकलन हुआ है, अतएव उसे रूपायित करने में लेखक ने कहीं-कहीं काव्यात्मक-शैली का आश्रय ग्रहण किया है। यथा — " कोई नहीं बता सकेगा कि कैसे / मैं भी नहीं / कि कैसे सम्भव हुआ वह मेरे प्रेम का / प्रार्थनाओं / और फिर पक्षियों में परिवर्तित होना / लेकिन हुआ / और अगली ही पुष्प-ऋतु में / फिर सम्भव होगा तुम्हारे चारों ओर मेरा समुद्र की तरह का बहना / और फूलों की तरह का उगना। "[96]

"आकाश कितना अनंत है" (शैलेश मटियानी) की मिसेज मैठाणी एक गंभीर स्वभाव की किन्तु बेहद भाव-प्रवण महिला है। एक स्थान पर अल्मोड़ा की एक अध्यापिका के समक्ष अपने चहेते पुत्रवत् युवक राजशेखर के संदर्भ में बात निकलने पर कहती है -- " शायद आप लोग कभी जीवन में इस सत्य को जान सकें कि दुःख जब देने पर आता है, तो कितना देता है.... मैं इसी में बूढ़ी हो चुकी हूं, लेकिन राजशेखर भी

इस रहस्य को अभी , शायद पहचान नहीं पा रहा है कि जीवन में दुःख कभी-कभी ऐसे भी आता है कि जितना हमें खाली करता है , हम सरोवर की तरह भरते जाते हैं । " [97] अभिप्राय यह कि मटियानीजी की भाषा कई बार हमें काव्य का-सा आनंद देती है ।

" नये प्रयोग एवं अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता के सन्दर्भ में निर्मल वर्मा का नाम उल्लेखनीय हैं । उनके उपन्यास "वे दिन " में रंग और गंध के कई उपमान मिलते हैं । उसमें कहीं ' नीला आलोक ' है , तो कहीं सपने-सा मटमैला-सा चमकीलापन है । कहीं " सुनहरा और भूरा हवा में कांपता हुआ वायलीन का सुर है " , तो कहीं " शुरू पतझर में पकी हुई घास की गंध है । " [98] उनके एक अन्य उपन्यास "लाल टीन की छत" में भी एक-से-बढ़कर नये उपमान है , जैसे — चढ़ाई पर का रिक्शा == रेंगती हुई मक्खी ; चांद = सेव की फांक ; गोरी स्त्री की टांगें = सफेद मांस की कैंची ; थूक = जबान का पसीना ; बादल = रूई के फाहे आदि आदि । [99]

इस संदर्भ में मोहन राकेश के उपन्यास "अन्धेरे बन्द कमरे" का उल्लेख अपरिहार्य हो जाता है , क्योंकि उसमें भी राकेशजी ने कई नये उपमानों का प्रयोग किया है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं — अभिनय = चेहरे का व्यायाम ; गली = एक बहुत बड़ा उगालदान ; चुंबन = होठों का ओटोग्राफ ; प्रशंसा = श्रद्धांजलि के टोस्ट ; स्वर्गवास = दूसरे दफ्तर में जाना ; सड़क = एक तड़पता हुआ अजगर । [100]

नूतन भाषाभिव्यंजना के सन्दर्भ में कृष्णा सोबती को भी नहीं भुलाया जा सकता । उनके उपन्यास "सूरजमुखी अंधेरे के" में ऐसे कई नये उपमान प्राप्त होते हैं जिनसे उनकी शैली काव्यात्मक हो गई है । इनमें निम्नलिखित मुख्य हैं — उरोज = तरंगित वक्ष पर छलछलाते कलश ; कठोर बात = कैक्टस की बाढ़ ; कुंआरापन = कोख का एकान्त ; कामोत्तेजना = जुगनुओं की कतारें ; काम-सुख = नरम टहनियों पर पड़ता रस का बौर ; स्त्री का गुप्तांग = कुक्ष का पाटल ; चुंबन= होठों की पूजा ; ठण्डी

स्त्री = पथरीली अहल्या ; योनि = ओसभीगा कीमखाब ; रोमावली = हिम शिखरों से पिघलकर झर-झराती रति-क्षणों की माला ; वासना = चेहरे पर ढकी-सी आग ।[101]

उपरोक्त लेखकों व उपन्यासों के अतिरिक्त यह प्रवृत्ति हमें "मछली मरी हुई" {राजकमल चौधरी}, "अठारह सूरज के पौधे" तथा "बैसाखियोंवाली इमारत" {रमेश बक्षी, "ह दिल एक सादा कागज" {डा. राही मासूम रजा}, "राग दरबारी" {श्रीलाल शुक्ल}, "कथासूर्य की नयी यात्रा" {हिमांशु श्रीवास्तव}, "सांप और सीढ़ी" {शानी} जैसे अनेक उपन्यासों तथा लेखकों में मिलती है ।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास संस्कृति-प्रधान होते हैं, अतः उसमें संस्कृत कई शब्द मिलते हैं । उनके उपन्यास "चारु चन्द्रलेख" में प्रत्येक पृष्ठ पर संस्कृत के अनेकानेक शब्द प्राप्त होते हैं, जैसे — कृच्छाचार, कान्तार, नयनाम्बु, तेजोवर्तिका, खदिर {कत्था}, सुधाचुर्ण {चूना}, ताम्बुल-वीटक, कलैव्य, भूर्जपत्र आदि आदि ।[102]

शिवानीजी के उपन्यासों में एक शैलीकार की दृष्टि से ~~कु~~ ये सभी गुण उपलब्ध होते हैं । शैलेश मटियानी की भांति उनकी भाषा में भी कुमाऊं भाषा के कई शब्द आते हैं । परंतु मटियानीजी में जितने ग्रामीण शब्द आते हैं, उतने ग्रामीण कुमाऊं बोली के शब्द शिवानीजी में नहीं आते, कदाचित् यह उनके अनुभव की सीमा भी है । परंतु नये उपमानों के प्रयोग इत्यादि में यह बराबर आधुनिकों के साथ स्पर्द्धा कर सकती हैं । यहाँ केवल उनके उपन्यास "कृष्णकली" से कुछेक उदाहरण जुटाये गए हैं । यथा — आँखें - नीले बटन ; ऐसेम्बली का उटपटांग प्रश्न = विषबुझा घातक बाण ; कमर = बेंत का लचीला धनुष ; तन्वंगी हल्की स्त्री = कपास का फूल ; प्रेम की दुरूह बाराखड़ी = चीनी वर्णाक्षरी ; प्रशंसा का मद = शैम्पेन ; बढ़ता रक्तचाप = हृदयहीन शत्रु ; सुदूरवर्ती प्रदेश == {नौकरीवालों के लिए} प्रांत का अनचाहा कुंभीपाक ; हिप्पी = शिव की बारात के गण ।[103]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी की भाँति शिवानीजी के औपन्यासिक गद्य में भी संस्कृत के तत्सम शब्दों का आधिक्य उपलब्ध होता है । परंतु इसके कारण जैसा कि कई आलोचकों का मानना है, उनकी भाषा में काठिन्य या दुर्बोधता आ गयी है, यह अनुचित है । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी स्वयं शिवानीजी के संदर्भ में लिखते हैं -- " जब कभी अवसर मिलता है मैं शिवानीजी की रचनात्मकता को पढ़ लेता हूँ । अधिकतर पात्र उच्चतर तबके के होते हैं । उनकी भाषा में अद्भुत रवानगी होती है । " 104

हिन्दी के एक अन्य आलोचक डा॰ ठाकुरप्रसाद सिंह शिवानीजी के विषय में लिखते हैं -- " वे समृद्ध कथानक और जीवन्त परिवेश की लेखिका हैं तथा उन्होंने विविधतापूर्ण और संस्कारयुक्त जीवन जिया है । वे चाहें भी तो अपनी इस पूरे जीवन की कमाई से अपने को अलग नहीं कर सकतीं । इसलिए जब आलोचक उनके इन गुणों को दोष बना देते हैं तो लगता है कि जैसे उनसे कहीं कोई गलती हो रही है । हिन्दी एक विस्तृत क्षेत्र की भाषा है और उसमें विभिन्न स्तरों के लेखक लिखने के लिए आगे बढ़ रहे हैं । ऐसी एक विकसित होती हुई भाषा के सभी लेखक एक जैसी भाषा बोलें और एक जैसी परिस्थितियों में जियें, यह संभव नहीं है । यदि ऐसा होता है तो हिन्दी के लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य और कोई नहीं होगा । पश्चिमी देशों के बड़े नगरों की कुढ़न को व्यक्त करने वाली भाषा हिन्दुस्तान ऐसे पूरे देश की भाषा नहीं बन सकेगी, यह मैं विश्वास के साथ कहता हूँ । मेरा यह विश्वास जिन कुछ लेखकों के बल पर दृढ़ होता है, उनमें शिवानी भी हैं । " 105

अभिप्राय यह कि जहाँ तक हिन्दी की एक समृद्ध, संपन्न शैलीकार का सवाल है, शिवानीजी उसमें प्रथम पंक्ति में आती हैं । उनके गद्य में विस्तृति एवं वैविध्य है । एक तरफ जहाँ संस्कृत तत्सम शब्दावली की अनुपम छटा है, वहाँ कथा-प्रसंग व चरित्र के अनुरूप बंगला, कुमाउंनी, पंजाबी, गुजराती शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं । जो पाठक उपन्यास में काव्य का आनंद चाहते हों, शिवानी के उपन्यास उनके लिए काफी "इनवाइटिंग" से लग सकते हैं ।

1.09 : निष्कर्ष :

इस अध्याय के समग्रावलोकन के पश्चात् हम निम्न लिखित निष्कर्षों तक सहजतया पहुंच सकते हैं :—

§1§ प्रेमचन्दोत्तर काल में औपन्यासिक लेखन में पहले के किसी भी काल-खण्ड की तुलना में महिला-लेखिकाओं का आधिक्य है । इन महिला लेखिकाओं में शिवानीजी का अपना एक अलग स्थान है । हिन्दी गद्य को सरस , समृद्ध , संपन्न एवं काव्यात्मक बनाने में उनकी जो भूमिका है वह स्मरणीय एवं श्लाघनीय है ।

§2§ उपन्यास मानव-जीवन का गद्य है । अतः उसमें वही सफल हो सकता है जिसके पास विपुल जीवनानुभवों की पूंजी हो । शिवानीजी ने अपने उपन्यासों में औपन्यासिक-गद्य की समृद्धि एवं संपन्नता का परिचय दिया है ।

§3§ शिवानीजी ने उपन्यास में यथार्थ की निर्मिति हेतु तदनुरूप भाषा का प्रयोग किया है ।

§4§ कथ्य , चरित्र एवं परिवेश के यथार्थ विश्वसनीय निरूपण के लिए शिवानीजी ने विभिन्न स्तरों के गद्य को अंगीकृत किया है । फलतः उनमें कई बार एकाधिक भाषा-शैलियां उपलब्ध होती हैं ।

§5§ भाषाशैली की दृष्टि से उनके "कृष्णकली" , "चौदह फेरे" , "विषकन्या" , " श्मशान चम्पा" , "कालिन्दी" , "मायापुरी" , "भैरवी" , "कैंजा " , "गैंडा" , "मानिक" , "कृष्णवेणी" , "पाथेय " "सुरंगमा" , विवर्त " , " उपप्रेती" प्रभृति उपन्यास स्मरणीय एवं उल्लेखनीय रहेंगे ।

§6§ शैलीकारों की दृष्टि से शिवानीजी की गद्य-शैली की तुलना आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी , निर्मल वर्मा , मोहन राकेश , शैलेश मटियानी , रमेश बक्षी , कृष्णा सोबती आदि उनके समकालीन लेखक-लेखिकाओं से की जा सकती है । सुसंस्कृत काव्यात्मक भाषाभिव्यंजना उनकी गद्यशैली की खास विशेषता है ।

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : डा. भारतभूषण अग्रवाल : पृ. 26 ।

§2§ वही : पृ. 23 ।

§3§ द्रष्टव्य : "काव्य के रूप " : बाबू गुलाबराय : पृ. 151 ।

§4§ द्रष्टव्य : भारतीय नवलकथा : गुजराती : डा. रमणलाल जोशी : पृ. 5-8 ।

§5§ द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : डा. गणपतिचन्द्र गुप्त : भाग-2 : पृ. 419 ।

§6§ वही : पृ. 419 ।

§7§ कुछ विचार : प्रेमचन्द : पृ. 27 ।

§8§ हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा. एस.एन. गणेशन : पृ. 58 ।

§9§ "हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य " : अज्ञेय : पृ. 96 ।

§10§ कलम का सिपाही : अमृतराय : पृ. 651 ।

§11§ वही : पृ. 652 ।

§12§ चिन्तनिका : डा. पारुकांत देसाई : "साठोत्तरी उपन्यास : सैद्धान्तिक निरूपण " नामक निबंध : पृ. 37-45 ।

§13§ न्यू इंग्लिश डीक्शनेरी ।

§14§ नोवेल एण्ड द पिपल : पृ. 20 ।

§15§ व्होट इज़ नोवेल एण्ड व्होट इज़ इट गुड फोर : द राइटर्स एट वर्क : हार्पर एण्ड ब्रधर्स : पृ. 8 ।

§16§ द्रष्टव्य : संस्कृति के चार अध्याय : डा. रामधारीसिंह दिनकर : पृ. 466 ।

§17§ वही : पृ. 466 ।

§18§ लेखक की जमीन : गोविन्द मिश्र : पृ. 18 ।

§19§ सेवासदन : प्रेमचन्द : पृ. 124-128 ।

§20§ "क्षितिज" : गुजराती पत्रिका : संपादक : डा. सुरेश जोशी : नवलकथा विशेषांक : "मैला आंचल" विषयक लेख : डा. उमाशंकर जोशी ।

§21§ रेणु की श्रेष्ठ कहानियां : भूमिका : राजेन्द्र यादव : पृ. 6 ।

§22§ मैला आंचल : पृ. 62-63 §23§ वास्यन्द्रलेख : पृ. 347-348 ।

§24§ मुरदाघर : पृ. 179 ।

§25§ हौलदार : शैलेश मटियानी : पृ. क्रमशः 15, 79, 79, 171, 111, 257, 133, 322, 295, 284, 256 । §26§ वही : पृ. 252-253 ।

§27§ मुख सरोवर के हंस : शैलेश मटियानी : पृ. 3-4 ।

§28§ बर्फ गिर चुकने के बाद : शैलेश मटियानी : पृ. 73 ।

§29§ पीतांबरा : भगवतीशरण मिश्र : पृ. 83 ।

§30§ जिन्दगीनामा : कृष्णा सोबती : पृ. 20-21 ।

§31§ मित्रो मरजानी : कृष्णा सोबती : पृ. 20 ।

§32§ सूरजमुखी अंधेरे के : कृष्णा सोबती : पृ. 125 ।

§33§ किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई : शैलेश मटियानी : आमुख से ।

§34§ से §36§ : वही : पृ. क्रमशः 94 , 100 , 100-101 ।

§37§ कृष्णकली : शिवानी : पृ. 15 §38§ चौदह फेरे : शिवानी:पृ. 13 ।

§39§ बर्फ गिर चुकने के बाद : पृ. 26 ।

§40§ द्रष्टव्य : चिन्तनिका : डा. पारूकांत देसाई : "राग दरबारी: व्यंग्य उपन्यासों का अनोखा प्रतिमान " : शीर्षक लेख : पृ. 92 ।

§41§ राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल : पृ. 91-92 ।

§42§ विस्तार के लिए देखिए : चिन्तनिका : डा. पारूकांत : पृ. 106-7 ।

§43§ से §49 § वे दिन : निर्मल वर्मा : पृ. क्रमशः 236, 232, 193, 195, 217, 202, 211 ।

§50§ हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास-परंपरा में साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : शोध-प्रबंध : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 620-621 ।

§51§ द्रष्टव्य : आस्पेक्ट्स आफ द नोवेल : ई.एम. फार्स्टर ।

§52§ द्रष्टव्य : राग दरबारी : पृ. 96 ।

§53§ पानी के प्राचीर : डा. राम दरश मिश्र : पृ. 170 ।

§54§ आदिम राग : डा. रामदरश मिश्र : पृ. 42 ।

§55§ सूखे सेमल की सुन्तों पर : डा. पारूकांत : पृ. 95 ।

§56§ नदी नहीं मुड़ती : डा. भगवतीशरण मिश्र : पृ. 100-101 ।

§57§ राग दरबारी : पृ. 50 । §58§ कृष्णकली : पृ. 196 ।

§59§ से §61§ : कृष्णकली : पृ. क्रमशः 196 , 197 , 197 ।

§62§ समीक्षायण : डा. पारूकांत : पृ. 121 ।

§63§ पुरूषोत्तम : डा. भगवतीशरण मिश्र : पृ. 428 ।

§64§ चारु चन्द्रलेख : पृ. 140-141 ।

§65§ इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि रिल्के ने यहां बैठकर अनेक कविताएं लिखी थीं । द्रष्टव्य : वे दिन : पृ. 54 ।

§66§ वे दिन : पृ. 93 §67§ मुरदाघर : पृ. 149 ।

§68§ चौदह फेरे : पृ. 152 §69§ शिवानी: कृष्णकली : लेखकीय वक्तव्य से ।

§70§ द्रष्टव्य : चौदह फेरे : पृ. 3 ।

§71§ श्मशानचम्पा : पृ. 23 §72§ कैंजा : पृ. 30 ।

§73§ से §75§ : रति विलाप : पृ. क्रमशः 17, 31, 32 ।

§76§ आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 47-48 ।

§77§ भैरवी : पृ. 117 §78§ वही : पृ. 132 ।

§79§ द्रष्टव्य : तीसरा बेटा : पृ. 16 ।

§80§ द्रष्टव्य : एन ए. बी. ड्रेड आफ लव : इंगे एण्ड हेगेलर : पृ. 214 ।

§81§ भूमिका : चौदह फेरे : पृ. 6-7 । §82§ वही : पृ. 6 ।

§83§ द्रष्टव्य : शिवानी की श्रेष्ठ कहानियां : परिचय : पृ. 6 ।

§84§ द्रष्टव्य : चौदह फेरे : भूमिका : पृ. 9 ।

§85§ वही : पृ. 9 ।

§86§ शिवानी की श्रेष्ठ कहानियां : परिचय : पृ. 5 ।

§87§ चौदह फेरे : भूमिका : पृ. 10 ।

§88§ से §90§ : चौदह फेरे : भूमिका : पृ. क्रमशः 10-11, 6, 8 ।

§91§ द्रष्टव्य : शिवानी की श्रेष्ठ कहानियां : परिचय : पृ. 6 ।

§92§ वही : पृ. 7 §93§ चौदह फेरे : भूमिका : पृ. 12-13 ।

§94§ चकबस्त का एक शेर : डा. देसाई की व्यक्तिगत उद्धरण डायरी से ।

§95§ यहां संकेत बाणभट्ट से सम्बद्ध एक प्रसिद्ध कथा से है ।

§96§ बर्फ गिर चुकने के बाद : शैलेश मटियानी : पृ. 72

(97) आकाश कितना अनंत है : शैलेश मटियानी : पृ. 50 ।

(98) हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास-परंपरा में साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डा. पारूकांत देसाई : शोध-प्रबंध : पृ. 621 ।

(99) लाल टीन की छत : निर्मल वर्मा : पृ. क्रमशः 19, 157, 69, 43, 163 ।

(100) अन्धेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश : पृ. क्रमशः 413, 303, 273, 309, 334 ।

(101) सूरजमुखी अँधेरे के : कृष्णा सोबती : पृ. क्रमशः 110 , 98, 111, 116, 116, 113, 117, 90, 117, 115 ।

(102) चारु चन्द्रलेख : पृ. क्रमशः 19, 111, 168, 206, 246, 246, 246, 314, 317 ।

(103) कृष्णकली : पृ. क्रमशः 53, 123, 67, 158, 23, 191, 47, 90, 140 ।

(104) विषकन्या : शिवानी : फ्लैप पर प्रकाशित वक्तव्य से ।

(105) चौदह फेरे : भूमिका : पृ. 5 ।

======= xxxxxxx =======